ओ३म्

वैदिक साधना पद्धति

सम्पादक : ब्र. अरुणकुमार "आर्यवीर"

पूर्व प्रकाशित : २०००
परिवर्द्धित तृतीय संस्करण २००० प्रति
प्रकाशन तिथि : श्रावण २०७५ विक्रमी
अर्थ सहयोग : श्री हर्ष आर्य पुणे
मुद्रक : रवि प्रिंटिंग प्रैस, जबलपुर

सांतसा प्रकाशन

पाणिनीया पाठशाला, आर्ष शोध संस्थान,

अलियाबाद, मंडल शामीरपेट, जिला मेडिचल, तेलंगाणा ५००१०१

दूरभाष : ७६६६९८६८३७, ८०७४८७२०२८

E-mail : 1aryaveer@gmail.com, Web : www.santasa.org

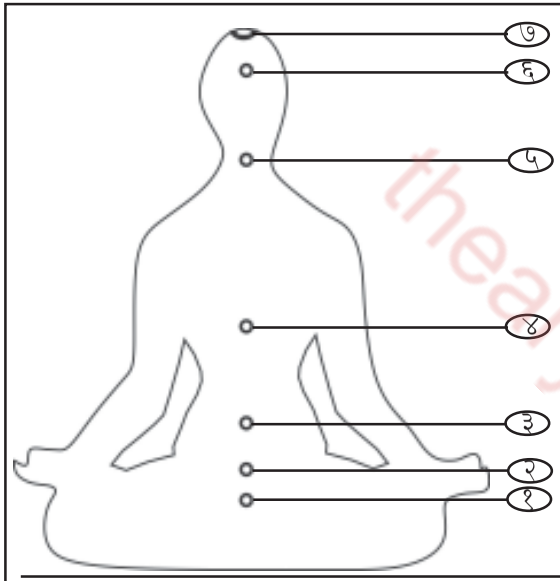

७	सत्यम्	आनन्दमय	दयालु		अभय		सत्यम्
६	तपः	विज्ञानमय	न्यायकारी	अजन्मा	अमर	नित्य	ज्ञानम्
५	जनः	मनोमय	सर्वशक्तिमान्	अनन्त	अजर	पवित्र	अनन्तम्
४	महः	प्राणमय	निराकार	निर्विकार	सर्वान्तर्यामी	सृष्टिकर्ता	ब्रह्म
३	स्वः	अन्नमय	आनन्द	अनादि	सर्वव्यापक		
२	भुवः		चित	अनुपम	सर्वेश्वर		
१	भूः		सत्	सर्वाधार			

चित्त की पांच अवस्थाएं

क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध।

१. क्षिप्त : (रजोगुण + तमांगुण) ऐश्वर्य एवं विषयप्रियता। **२. मूढ़ :** (तमोगुण) अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य। **३. विक्षिप्त :** (सत्वगुण + रजोगुण) धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य। **४. एकाग्र :** (सत्वगुण) १) वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जनानेवाला चित्त, २) क्लेशों का क्षीण याने कमजोर होना, ३) बांधनेवाले कर्मो का शिथिल हो जाना, ४) चित्त का निरुद्ध अवस्था में पहुंच जाना। इसे सम्प्रज्ञात योग भी कहते हैं। सम्प्रज्ञात योग के चार भेद १} वितर्क, २} विचार, ३} आनन्द, ४} अस्मिता। ये सबीज समाधियां हैं।

५. निरुद्ध : (त्रिगुणातीत अवस्था = आधार कारण प्रकृति) निर्बीज असम्प्रज्ञात समाधि (योगदर्शन समाधिपाद व्यासभाष्य सूत्र १—२)

thearyasamaj.org

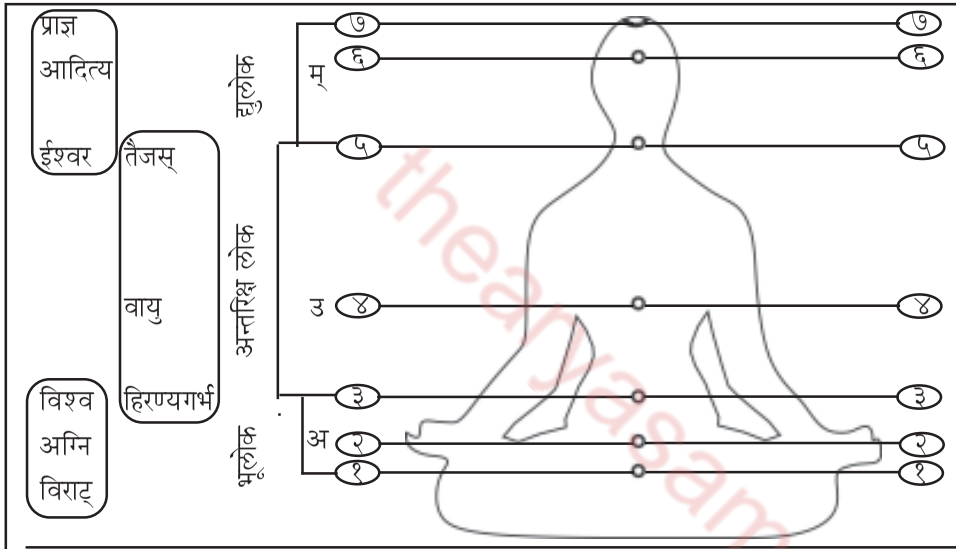

७	सत्यम्	आनन्द	अग्ने नय स नो बन्धु:			उद्वयं तमसस्परि		
६	तप:	विज्ञान	प्रजापते	सहोऽसि	ऊर्ध्वा दिग्विष्णु:	उदुत्यं जातवेदसम्	सुषारथिरश्वानिव	
५	जन:	मन	येन द्यौरुग्रा	मन्युरसि	ध्रुवा दिग्विष्णु:	चित्रं देवानाम्	यस्मिनृच: साम	आकाश
४	मह:	प्राण	य: प्राणत:	ओजोऽसि	उदीची दिक्सोम:	तच्चक्षुर्देवहितम्	येनेदं भूतम्	वायु
३	स्व:	अन्न	य आत्मदा	बलमसि	प्रतीची दिग्वरुण:		यत्प्रज्ञानमुत चेत:	अग्नि
२	भुव:		हिरण्यगर्भ:	वीर्यमसि	दक्षिणा दिगिन्द्र:		येन कर्माण्यपस:	जल
१	भू:		विश्वानि	तेजोऽसि	प्राची दिगग्नि:		यज्जाग्रतो दूरम्	पृथ्वी

thearyasamaj.org

साधना से मुक्ति

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। (योग १.२)

मनुष्य रजोगुण, तमोगुणयुक्त कर्मों से मन को रोक, शुद्ध सत्वगुणयुक्त कर्मों से भी मन को रोक, शुद्ध सत्वगुणयुक्त हो पश्चात् उसका निरोध कर, एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त का ठहरा रखना निरुद्ध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना। (स.प्र. नौवां समुल्लास) महर्षि दयानन्द सरस्वती

जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न होकर संयमी होवे। (स.प्र.सातवां समु., म. दयानन्द जी)

अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्त-राकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति।। (छान्दोग्य. ८/१/१) जिस समय इन सब साधनों से परमेश्वर की उपासना करके उसमें प्रवेश किया चाहें उस समय इस रीति से करें कि **(अथ यदिद.)** कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदयदेश है जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है उसमें कमल के आकार वेश्म अर्थात् अवकाशरूप एक स्थान है, और उस के बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर-भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है। (ऋग्वेदादि भा.भू. उपासना विषय, म.दयानन्द जी)

यदोपासको योगी उपासनां विहाय सांसारिक व्यवहारे प्रवर्त्तते तदा सांसारिक जनवत् तस्यापि प्रवृत्तिर्भवति आहोस्विद् विलक्षणेत्यत्राह- "वृत्ति सारूप्यम् इतरत्र।" (योग. १/४) **इतरत्र सांसारिक व्यवहारे प्रवृत्तेऽपि उपासकस्य योगिनः शान्ता, धर्मारूढा, विद्याविज्ञानप्रकाशा,**

सत्यतत्त्वनिष्ठाऽतीवतीव्रा, साधारणमनुष्यविलक्षणा अपूर्वा एव वृत्तिर्जायते। नैव ईदृश्य अनुपासकानाम् अयोगीनां वृत्तिः जायत इति। उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं तब योगी की वृत्ति तो सदा हर्षशोकरहित, आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्दयुक्त रहती है। और संसार के मनुष्य की वृत्ति सदा हर्षशोकरूप दुःखसागर में ही डूबी रहती है। उपासक योगी की ज्ञानरूप प्रकाश में सदा बढ़ती रहती है और संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा अंधकार में फंसती जाती है। (म.दयानन्द- ऋ.भा.भू. उपासनाविषय)

मुक्ति के विशेष साधन

सुखमूल धर्म धारें, दुःखमूल अधर्म त्यागें।

विवेक वैराग्य अभ्यास

प्रथम साधन **विवेक** :

१. सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चय।

२. शरीर अर्थात् **जीव पंचकोशों** का विवेचन : अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय।

१) **अन्नमय कोश** : त्वचा से अस्थिपर्यन्त पृथ्वीमय। (अन्न, रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य।)

२) **प्राणमय कोश** : १. प्राण : भीतर से बाहर, २. अपान : बाहर से भीतर, ३. समान : नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुंचाता, ४. व्यान : सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म, ५. उदान : जिससे कण्ठस्थ अन्नपान खेंचा जाता एवं बल पराक्रम होता।

३) **मनोमय कोश** : मन, अहंकार, वाक्, पाद, पाणि, पायु, उपस्थ।

४) **विज्ञानमय कोश** : बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, नेत्र, घ्राण, रसना, त्वचा।

५) **आनन्दमय कोश** : प्रीति-प्रसन्नता, न्यूनानन्द, अधिकानन्द, आनन्द, आधार कारणरूप प्रकृति।

३. **अवस्थाएं** : १) जागृत, २) स्वप्न, ३) सुषुप्ति, ४) तुरीय।

४. **शरीर** : १) **स्थूल** : जो दीखता है।

२) **सूक्ष्म** : ५ प्राण, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ सूक्ष्मभूत, मन, बुद्धि। इनके दो रूप १) भौतिक २) अभौतिक।

३) **कारण** : सुषुप्ति गाढ निद्रा, प्रकृतिरूप सर्वत्र विभु, सबके लिए एक।

दूसरा साधन **वैराग्य** : सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग।

तीसरा साधन **षट्क सम्पत्ति** : शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान।
१) **शम** : आत्मा और अन्तःकरण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में प्रवृत्ति।
२) **दम** : इन्द्रियों और शरीर को व्यभिचारादि दुष्कर्मों से हटाकर जितेन्द्रियत्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्ति।
३) **उपरति** : दुष्ट कर्म करनेवाले पुरुषों से दूरी।
४) **तितिक्षा** : द्वन्द्वों को सहते मुक्ति साधनों में लगे रहना।
५) **श्रद्धा** : वेदादि सत् शास्त्र, पूर्ण आप्त विद्वानों तथा सत्योपदेष्टा महाशयों पर विश्वास।
६) **समाधान** : चित्त की एकाग्रता।

चौथा साधन **मुमुक्षुत्व** : मुक्ति और उसके साधनों में अत्यन्त लगाव जैसे भूखे प्यासे को अन्न-जल की चाह हो वेसे।

चार साधनों के पश्चात् **चार अनुबन्ध** अधिकारी, सम्बन्ध, विषयी, प्रयोजन।
१) **अधिकारी** : उपरोक्त चारों साधनों से युक्त पुरुष मोक्ष का अधिकारी है।
२) **सम्बन्ध** : ब्रह्म प्राप्ति रूप मुक्ति प्रतिपाद्य तथा वेदादि शास्त्र पतिपादक को यथावत समझ अन्वित करना।
३) **विषयी** : सभी शास्त्रों का प्रतिपादन विषय ब्रह्म और उसकी प्राप्तिरूप विषयवाले पुरुष का नाम विषयी।
४) **प्रयोजन** : समस्त दुःखों से निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति रूप मुक्तिसुख होना।

श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार

सत्त्व रज तम

१) **सत्वगुण** : शान्त प्रकृति, पवित्रता, विद्या, विचार।
२) **रजोगुण** : ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोष।
३) **तमोगुण** : क्रोध, मलिनता, आलस्य, प्रमाद आदि।

rbal.arsamaj.org

मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा।

विशेष : **नित्यप्रति न्यून से न्यून दो घण्टा पर्यन्त मुमुक्षु ध्यान अवश्य करे जिससे भीतर के मनादि पदार्थ साक्षात् हों।** (सत्यार्थ प्रकाश नवम् समुल्लास से साभार संक्षेप) महर्षि दयानन्द सरस्वती

ओऽम् भूर्भुवः स्वः। (तीन महाव्याहृतियों का ध्यान)

हमारे अस्तित्व के तीन मुख्य भाग हैं। स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण। इनका सम्बन्ध भूः, भुवः तथा स्वः इन तीनों महाव्याहृतियों से क्रमशः होता है। भूमय अस्तित्व बाहरी स्थूल काया है जो पार्थीव नाम से भी कही जाती है, जो पंच स्थूल भूतों से निर्मित है। आयुर्वेद के अनुसार ये अन्न-रसमय है। अर्थात् अन्न- रस- रक्त- मांस- मेद- अस्थि- मज्जा- शुक्रमय है। जीव के जाति एवं लिंग का निर्धारण इसी में होता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त एक सी बनी रहे उसे जाति कहते हैं, जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी आदि। इसी प्रकार पुरुष स्त्री या नपुंसकलिंग निर्धारण भूमय अस्तित्व का ही विषय है। हर जाति के लिए औसतन आयु निर्धारण भी अलग-अलग होती है। जैसे मनुष्य जीवन की औसतन आयु शत वर्ष की मानी गई है जो घटायी या निश्चित सीमा तक बढ़ायी भी जा सकती है।

भूमय अस्तित्व में ईश्वर निरन्तर प्राणों के माध्यम से हमारी रक्षा कर रहे हैं। प्राणों के कारण से ही शरीर में जीवन के लक्षण होते हैं। हम जानें या न जानें प्रत्यक्ष रूप से सर्वव्यापक होकर ईश्वर ही हमारे शरीर में सतत अनेकों प्रकार की सेवाएं हमें दे रहे हैं। जैसे आंख, कान आदि इन्द्रियों से देखना, सुनना, दिमाग द्वारा सोचना, हृदय का धडकना, समूचे शरीर में रक्त-संचार का होना, शरीर में पाचक रसों का उत्पन्न होना, खाए-पीए अन्न-पान का पाचन होकर उपरोक्त रसादि सप्त धातुओं का निर्माण एवं शरीर में सुवितरण होना, शरीर में उत्पन्न त्याज्य अपशेष का शरीर से बाहर निकालने की व्यवस्था आदि आदि असंख्य प्रकार से ईश्वर की सेवाएं हमें इस भूमय अस्तित्व में निरन्तर प्राप्त हो रही हैं।

ओऽम् भूः इस जप के माध्यम से हम ईश्वर प्रणिधान पूर्वक उसके द्वारा प्राप्त सेवाओं को याद करते, उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं तथा

धर्मार्थकाममोक्ष के प्रमुख साधन रूप इस भूमय स्थूल अस्तित्व को ताउम्र स्वस्थ निरोग बनाए रखने हेतु संकल्प भी करते हैं।

भुवःमय हमारा सूक्ष्म अस्तित्व है जो आंखों से दिखायी नहीं देता। इसमें अन्तकरण चतुष्टय तथा दस इन्द्रियां प्रमुख हैं। मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार इन चारों के समुच्चय को अन्तकरण चतुष्टय कहते हैं। सुनने, देखने, सूंघने, चखने तथा छूने की शक्तिरूप ज्ञानेन्द्रियां हैं। इनसे क्रमशः शब्द, रूप, गन्ध, रस तथा स्पर्श इन पांच विषयों का ग्रहण या प्रत्यक्ष होता है। इन इन्द्रियों के भूमय स्थूल अस्तित्व में क्रमशः कान, आंख, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा ये गोलक होते हैं। इसी प्रकार वाक्, पाद, पाणि, पायु, उपस्थ ये पंच कर्मेन्द्रियां हैं। वाणी से बोलना, पैरों से गमनागमन, हाथों से कर्म, पायु मल अपशेष त्याग तथा उपस्थ प्रजनन एवं जल अपशेष (मूत्र) त्याग हेतु प्रयुक्त होते हैं। बुद्धि से निर्णय लेना, मन से संकल्प-विकल्प, अहंकार से शरीर में रहते अपने होने का बोध तथा चित्त में जन्म-जन्मान्तर के कर्म एवं संस्कार पड़े रहते हैं।

यह भुवःमय सूक्ष्म अस्तित्व हर जीव को आदि सृष्टि में परमात्मा निर्माण करके देते हैं। जीवात्मा सृष्टि के अन्त तक अथवा मुक्ति पर्यन्त लगातार इसी भुवःमय सूक्ष्म शरीर से विभिन्न स्थूल शरीरों को पाकर कार्य करता है। अर्थात् इसकी अधिकतम आयुमर्यादा चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष याने एक ब्रह्मदिवस अर्थात् सृष्टिकाल जितना होता है। इस को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह चलती सृष्टि में बीच में नष्ट नहीं होता। जब जीव मनुष्य योनि को पाकर अपनी अविद्या हटाकर समाधि लगाकर अपना तथा ईश्वर का साक्षात्कार कर संस्कारों का क्षय कर देगा तथा निष्काम कर्मों द्वारा मुक्ति की योग्यता अर्जित कर लेगा तो जीव का सृष्टि में पुनर्जन्म न हो सकने की स्थिति में यह भुवःमय सूक्ष्म शरीर भी नष्ट हो जाएगा।

ओऽम् भुवः इस जप के माध्यम से हम जन्म-जन्मान्तरों से संचित अविद्या को हटाने हेतु ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। ईश्वर का नाम भी भुवः है जो हमें सब प्रकार के दुःखों से छुड़ाते हैं। इन्द्रिय दोष एवं संस्कार दोष से अविद्या पुष्ट होती है। हम अपने अन्तःकरण की शुद्धि हेतु ईश्वर की पवित्रता को धारण करते हैं तथा विवेक के माध्यम से शुद्ध ज्ञान भी अर्जित

करते हैं। शुद्ध ज्ञान को आधार बनाकर कर्मों को भी शुद्ध करते जाते हैं। इस स्तर में ईश्वर प्रणिधान पूर्वक बुद्धि की निर्मलता तथा इन्द्रियों की ध र्माचरण में दृढ़ता हेतु प्रार्थना की जाती है।

स्वःमय हमारा अस्तित्व कारणमय है। इसमें तीनों अनादि पदार्थ आ जाते हैं। ईश्वर-जीव-प्रकृति तीनों ही अनादि पदार्थ अव्यक्त हैं। इनमें ईश्वर एवं जीव दानों ही चेतन तथा प्रकृति जड़ पदार्थ है। तीनों ही अनादि अनुत्पन्न नित्य पदार्थ हैं। सत्त्व-रज-तमोमय प्रकृतिरूपी कारण शरीर सब जीवों के लिए एक समान विभू है। अर्थात् प्रकृति के तीनों कण संसार के हर पदार्थ में होते हैं। ईश्वर का जीवों के साथ नित्य सम्बन्ध है। पर अविद्या के प्रभाव से जीव ने ईश्वर को भुला सा दिया है। शरीर के माध्यम से उत्पन्न होनेवाले सारे सम्बन्ध अनित्य हैं, संयोग-वियोगान्त होने से विनाशशील हैं। पर अविद्या के प्रभाव में जीव की सारी चेष्टा इन अस्थायी सम्बन्धों को स्थायी मानने एवं बनाए रखने की है।

ओऽम् स्वः इस जप के माध्यम से ईश्वर की सन्निकटता को अनुभव करने का हम प्रयास करते हैं। विनाशशील संसार और सांसारिक सम्बन्धों की यथार्थता को समझते ईश्वर के अपने साथ नित्य सम्बन्धों के संस्कार बनाते जाते हैं। उपासना योग से ईश्वर प्रणिधान सिद्ध करते व्यवहार काल में भी ईश्वर की उपस्थिति को स्मृतिपथ में बनाए रखने का संकल्प करते हैं।

अथ **ओंकार** साधना विवरण

यह ईश्वर का सर्वोकृष्ट निज नाम है। यह प्रसिद्धतम नाम भी है। इस एक नाम से ही ईश्वर के अनेकों नामों का ग्रहण होता है। यह ओम् अकार उकार एवं मकार इन तीन वर्णों से मिलकर बना है। **अकार** से विराट् अग्नि विश्वादि **उकार** से हिरण्यगर्भ वायु तैजसादि तथा **मकार** से ईश्वर आदित्य प्राज्ञादि नामों का ग्रहण होता है। अव रक्षणे धातु से ओम् शब्द बना है जिस का अर्थ है **ईश्वर निरन्तर हम जीवों की रक्षा कर रहा है।**

भू-लोक, अन्तरिक्ष-लोक तथा द्यु-लोक सम्बन्धी तीन-तीन सुषुम्णा केन्द्रों में इन अकारादि से सिद्ध होनेवाले नामों को पिरोते हुए धारणा बनाकर

साधना की जाती है। इस के लिए आप पृष्ठ ३ पर दिए गए चित्र का सहारा ले सकते हैं।

विराट् : वि पूर्वक राजृ दीप्तौ धातु से क्विप् प्रत्ययपूर्वक विराट् शब्द की सिद्धि है। जो बहु प्रकार के जगत् को प्रकाशित करे इससे ईश्वर का नाम विराट् है।

अग्नि : अञ्चु गतिपूजनयोः अथवा अगृ, अगि और इण इन गति अर्थक धातुओं से अग्नि शब्द की सिद्धि है। जो ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य होने से ईश्वर का नाम अग्नि है।

विश्व : विश प्रवेशने इस धातु से विश्व शब्द की सिद्धि है। जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो आकाशादि सब भूतों में प्रविष्ट हो रहा है इससे परमेश्वर का नाम विश्व है।

हिरण्यगर्भ : ईश्वर में ही सूर्यादि तेजवाले लोक उत्पन्न होके उसी के आधार से रहते हैं अथवा सूर्यादि तेजःस्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति और निवासस्थान होने से ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं।

वायु : वा गतिगन्धनयोः धातु से वायु शब्द की सिद्धि है। जो चराचर जगत का धारण जीवन और प्रलयकर्त्ता तथा सब बलवानों से अति बलवान ईश्वर को वायु कहते हैं।

तैजस् : तिज निशाने धातु से तेजः इससे तद्धित करने से तैजस् शब्द की सिद्धि है। जो आप स्वयं प्रकाश और सूर्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करनेवाला होने से ईश्वर का नाम तैजस् है।

ईश्वर : ईश ऐश्वर्ये इस धातु से ईश्वर शब्द की सिद्धि है। जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है तथा जो सकल जगत् उत्पादक सर्वशक्तिमान स्वामी और न्यायकारी होने से ईश्वर नामार्थ जानना चाहिए।

आदित्य : दो अवखण्डने धातु से अदिति इससे तद्धित करने से आदित्य शब्द की सिद्धि होती है। ईश्वर का विनाश कभी नहीं होता इसीलिए ईश्वर को आदित्य कहते हैं।

प्राज्ञ : प्र पूर्वक ज्ञा अवबोधने धातु से प्रज्ञ इससे तद्धित करने से प्राज्ञ शब्द की सिद्धि होती है। ईश्वर में भ्रान्तिरहित ज्ञान है और वह चराचर जगत के व्यवहारों को यथावत जाननेवाला होने से प्राज्ञ कहाता है।

गायत्री मन्त्र साधना

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।। (यजु ३६/३)

गायत्री मन्त्र की हम तीन प्रकार से साधना कर सकते हैं। प्रथम मन्त्र जप करके उसके एक एक शब्द के अर्थ की भावना ईश्वर प्रणिधानपूर्वक करें। दूसरे प्रकार में गायत्री मन्त्र के तीन चरणों का भाव रूप में ध्यान करें। तीसरा प्रकार है गायत्री मन्त्र पर जो प्रचलित पद्यानुवाद उपलब्ध हैं उनका मन्त्रपाठ के उपरान्त गान करें।

ओ३म् इस पद का अर्थ पूर्व लिख आए। भूः, भुवः और स्व ये तीन महाव्याहृतियां कहाती हैं। इनकी पृथक् से साधना विधि भी पूर्व वर्णन की है। तैतिरीय उपनिषद में भू को प्राण, भुवः को अपान तथा स्व को व्यान नाम से कहा गया है। **भूः** = ईश्वर प्राणों के माध्यम से सकल जगत के जीने का हेतु होने से प्राणों से भी प्रिय है। **भुवः** = ईश्वर मुक्ति की इच्छा करनेवाले मुमुक्षुओं, मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करनेवाला होने से अपान कहाता है। तथा **स्वः** = स्वयं आनन्दस्वरूप तथा अपने उपासकों को आनन्ददाता ईश्वर जो सब जगत में व्यापक होके सबको नियमों में रखता सबका आधार है व्यान नाम से कहाता है।

अब गायत्री मन्त्र का संक्षेप से अर्थ लिखते हैं- **तत्** = उस **सवितुः** = (सविता के) ईश्वर को सकल जगत का उत्पादक, सूर्यादि का प्रकाशक तथा समग्र ऐश्वर्यदाता होने से सविता कहते हैं। **वरेण्यम्** = ईश्वर सर्वश्रेष्ठ होने से वरण करने योग्य है **भर्गः** = ईश्वर के क्लेशनाशक तेज को भर्ग कहते हैं जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप है। **देवस्य** = (देव का) जो आत्माओं में प्रकाश करनेहारा शुद्ध पवित्रस्वरूप है उस ईश्वर के दिव्य तेज का **धीमहि** = हम ध्यान करते हैं, उसे अपने आत्मा में धारण करते हैं। **यः** = हे परमात्मा, **नः** = हम सबकी, **धियः** = बुद्धियों को, **प्रचोदयात्** = सकल बुराइयों से हटाकर सन्मार्ग में सदा प्रेरित करे।

गायत्री मन्त्र में ईश्वर के मुख्य नाम ओ३म् में से अकार का भूः से तथा मन्त्रभाग में से प्रथम चरण तत् सवितुर्वरेण्यम् से सम्बन्ध है। उकार का भुवः से तथा मन्त्र के मध्यम चरण भर्गो देवस्य धीमहि से सम्बन्ध है। इसी

प्रकार मकार का स्वः तथा मन्त्र के तृतीय चरण धियो यो नः प्रचोदयात् से सम्बन्ध है।

शतपथ ब्राह्मण की प्रसिद्ध प्रार्थना असतो मा सद्गमय का गायत्री के प्रथम चरण के साथ समायोजन करके प्रार्थना की जा सकती है। भापा जी ने अपनी कविता में लिखा है–

जगत् है सत रज तम रचा
तू तो है रे चैतन्यता
चयन है तेरा हक बड़ा
तू सत ही सत ले रे उठा

अर्थात् सविता परमात्मा ने यह संसार त्रिगुणात्मक प्रकृति से रचा है। हमें रजोगुण तथा तमोगुणयुक्त कर्मों से अपने को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त कर्मों को ही अपनाना है तभी हम चित्त की सत्त्वशुद्धि कर सकेंगे। यही तत् सवितुर्वरेण्यम् का भाव है।

तमसो मा ज्योतिर्गमय अर्थात् अन्तःकरण में विद्यमान अविद्यान्धकार को मिटाकर शुद्ध पवित्र आत्मज्ञान का प्रकाश या विद्या की स्थापना कर मेरे सारे क्लेशों को नष्ट कर दो। जिससे मैं समस्त दुःखों से निवृत्त हो जाऊं। यही भर्गो देवस्य धीमहि का भाव है।

मृत्योर्माऽमृतं गमय अर्थात् मृत्यु नहीं मैं अमृत की ओर बढ़ूं। न्यायदर्शनकार गौतम ऋषि ने बुद्धि और ज्ञान को पर्यायवाची माना है। ज्ञान से ही मुक्ति सम्भव है। जब जब हम ईश्वर को स्मरण करते हैं हमारा मन प्रसन्न शान्त सुखी होता है। ज्ञान का सतत आगम होता रहता है। ईश्वरीय दिव्य गुण प्रवेश करते हैं और जब जब ईश्वर की विस्मृति कर देते हैं अविद्या आ घेरती है। क्लेश पीसने लगते हैं। कुसंस्कार हावी होकर व्यक्ति अनिष्ट सोचता, अनिष्ट कहता, अनिष्ट करने लगता है। इसीलिए धियो यो नः प्रचोदयात् के माध्यम से व्यवहार काल में एक क्षण भी ईश्वर की विस्मृति न होने देने की कामना की जाती है। समाधि सिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात् ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है।

इस प्रकार गायत्री मन्त्र के तीन चरणों में भावार्थ को चिन्तन का विषय बनाकर ध्यान करने की विधि के पश्चात् अत्यन्त सरल विधि जो गायत्री मन्त्र का पद्यानुवाद हो उसका मन में गायन कर भी अभ्यास किया जा

सकता है। हम प्रचलित पद्यानुवाद के दो नमुने यहां दे रहे हैं-

तूने हमें उत्पन्न किया, पालन कर रहा है तू।
तुझसे ही पाते प्राण हम, दुःखियों के कष्ट हरता तू।।
तेरा महान् तेज है, छाया हुआ सभी स्थान।
सृष्टि की वस्तु वस्तु में, तू हो रहा है विद्यमान।।
तेरा ही धरते ध्यान हम, मांगते तेरी दया।
ईश्वर हमारी बुद्धि को, श्रेष्ठ मार्ग पर चला।।

प्राण प्रदाता संकटत्राता, हे सुखदाता ओऽम् ओऽम्।
सविता माता पिता वरेण्यम्, भगवन् भ्राता ओऽम् ओऽम्।
तेरा शुद्ध स्वरूप धरें हम, धारणधाता ओऽम् ओऽम्।
प्रज्ञा प्रेरित कर सुकर्म में, विश्व विधाता ओऽम् ओऽम्।
ओऽमानन्द ओऽमानन्द, ओऽमानन्द ओऽम् ओऽम्।।

आर्य समाज के द्वितीय नियमानुसार ईश्वर-जीव-प्रकृति या साध्य-साधक-साधन का चिन्तन

महर्षि दयानन्द जी ने चारों वेदों का स्वाध्याय करके ईश्वर का स्वरूप आर्य समाज के द्वितीय नियम के रूप में हमें दिया है। यह प्रारूप एक आर्दश साधना प्रारूप भी है। इसमें ईश्वर के गुण कर्म स्वभावानुसार २२ नाम इस क्रम से दिए गए है कि यदि सुषुम्णा में स्थित क्रमशः भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् क्रम में इन को पंचकोषों को ध्यान में रखते पिरोया जाता है तो आदर्श ध्यान की स्थिति बनती है। इस विषय में पुस्तक में दिए चित्र को पृष्ठ २ पर देखें। यद्यपि इस में ईश्वर के नामों का उल्लेख है पर साधना करते हुए हम जीव व संसार का भी तुलनात्मक उस उस नाम के साथ चिन्तन ईश्वर की स्तुति एवं प्रार्थनापूर्वक करेंगे।

सत् = अर्थात् सत्ता का सदा से होना। ईश्वर जीव एवं त्रिगुणात्मक प्रकृति की सत्ता सदा से है। प्रकृति से संसार बनता है तथा नष्ट भी होता है इसलिए संसार सत् नहीं है। **चित्** = अर्थात् ज्ञानयुक्त चेतन पदार्थ। ईश्वर एवं जीव दोनों चित् हैं। ईश्वर सर्वज्ञ तथा जीव अल्पज्ञ है। प्रकृति चित् नहीं होने से उससे उत्पन्न कार्य जगत भी चित् नहीं है अर्थात् जड़ है। **आनन्द**

= ईश्वर आनन्दस्वरूप है। धार्मिक मुमुक्षुओं को ही ईश्वर अपना आनन्द प्रदान करते हैं। **निराकार** = साकार वस्तुएं जगह घेरती हैं। ईश्वर तथा जीव दोनों ही पदार्थ परम सूक्ष्म एवं निराकार हैं तथा जगह नहीं घेरतीं। ईश्वर सर्वव्यापक निराकार है जबकि जीव एकदेशी अणुस्वरूप निराकार है। प्रकृति एवं उससे बना कार्य जगत साकार है। **सर्वशक्तिमान्** = ईश्वर के बड़े-बड़े कार्य हैं। अपने कार्यों को करने के लिए ईश्वर अन्य किसी भी पदार्थ की सहायता कभी नहीं लेता, इसी से ईश्वर सर्वशक्तिमान है। जीव अल्पशक्तिमान् है। जब तक ईश्वर द्वारा प्रदत्त शरीरादि साधन इसे नहीं मिलते यह कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो सकता। **न्यायकारी** = ईश्वर का स्वभाव पक्षपात रहित यथावत न्याय करने का है। ईश्वर हम जीवों के कर्मों का फल प्रदान करते हैं। जब तक हम पाप कर्मों को नहीं छोड़ेंगे ईश्वर की न्याय व्यवस्था में दुःखरूप दण्ड से बच नहीं सकते। **दयालु** = अनादि काल से ईश्वर हम जीवों के लिए निष्काम भाव से सृष्टि रचना करते आ रहे हैं। जिस समय हमें जैसा सुख चाहिए बिना हि मांगे वह हमें प्रदान करते हैं। हम ने भले ही उसकी उपेक्षा कर दी है किन्तु वह हमें अपनी सेवाएं सतत दे रहे हैं। हम भले ही उसके द्वारा प्रदत्त शरीर मन बुद्धि इन्द्रियों आदि का दुरुपयोग क्यों न करें वह हमें नए नए शरीर बनाकर देते ही आ रहे हैं। ईश्वर में अनन्त दया है।

अजन्मा = चेतन का शरीर के साथ संयोग जन्म कहाता है। ऐसा जन्म ईश्वर का कभी नहीं होता, न हो सकता। ईश्वर सर्वव्यापक होने से शरीर की मर्यादाओं में कभी नहीं आ सकता। वैसे तो जीव भी स्वरूप से अजन्मा है पर जब शरीरों को धारण करता है यही उसका जन्म कहाता है। **अनन्त** = ईश्वर की कहीं कोई सीमाएं मर्यादाएं नहीं हैं। ईश्वर में अनन्त ज्ञान है, अनन्त बल है, अनन्त विद्याएं-कलाएं हैं, ईश्वर के अनन्त गुण-कर्म-स्वभाव हैं, सृष्टि को रचने धारण करने जीवों के कर्मफल देने आदि का ईश्वर का सामर्थ्य अनन्त है। **निर्विकार** = तीनों अनादि पदार्थ निर्विकार होते हैं। प्रकृति से उत्पन्न कार्यजगत विकारी होता है। विकार कहते हैं उत्पन्न होना, नष्ट होना, घटना-बढ़ना, सड़ना-गलना, टूटना-फूटना, फैलना-सिकुड़ना आदि क्रियाओं को.. ऐसे विकार न तो ईश्वर में होते हैं न आत्मा में। **अनादि** = आदि शुरुआत को कहते हैं, अनादि वह है जिसका कोई प्रारम्भ नहीं

होता। ईश्वर, जीव एवं संसार का आदिमूल कारण प्रकृति तीनों ही पदार्थ अनादि हैं। संसार प्रवाह से अनादि है। कभी सृष्टिरूप तो कभी प्रलयरूप होता है। **अनुपम** = उपमा कहते हैं तुलना को, ईश्वर की किसी से भी तुलना या उपमा नहीं हो सकती। क्योंकि ईश्वर जैसा और कोई नहीं है। ईश्वर अद्वितीय है। वेदों में ईश्वर के स्वरूपज्ञान कराने हेतु जो उपमाएं मिलती हैं वे वास्तव में हीन उपमाएं हैं। ईश्वर अनुपम है। **सर्वाधार** = अरबों-खरबों निहारिकाओं, आकाशगंगाओं उनमें भी अरबों सौरमण्डलों उनमें भी अपने अपने सूर्यों के परिभ्रमण करते असंख्यात ग्रह-उपग्रहों को ईश्वर अपने अन्दर बनाकर धारण करते हैं। हम जीवों के भी कर्मफल दाता आदि होने से ईश्वर ही आधार है। **सर्वेश्वर** = ईश्वर सकल जगत के अकेले स्वामी हैं। हमारे पास जो भी ज्ञान, स्वास्थ्य, सगे-सम्बन्धी, धन-सम्पत्ति आदि है उन सबका दाता ईश्वर ही है। इसलिए वास्तविक स्वामी तो वही है। हम गौण स्वामी हैं, केवल प्रयोग के अधिकारी हैं। **सर्वव्यापक** = ईश्वर सर्वव्यापक है। हम अपने मन से कितनी ही दौड़ लगाएं सर्वव्यापक होने से ईश्वर पहले से वहां विद्यमान है। ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहां ईश्वर की उपस्थिति न हो। **सर्वान्तर्यामी** = ईश्वर कण-कण में विद्यमान हैं। प्रत्येक वस्तु में समाए हैं। अणु-परमाणु में भीतर से भीतर रहते हैं। हमारे अन्तकरण में आत्मा में बैठे हुए हैं। हम मन में भी ईश्वर से छुपकर कोई विचार तक नहीं कर सकते। अन्तर्यामी रूप से ईश्वर हमें सतत देख-सुन-जान रहे होते हैं। **अजर** = जरा कहते हैं बुढ़ापे को या शक्तियों के ह्रास को। ईश्वर अजर है अर्थात सदा युवान बने रहते हैं। हम जीव भी स्वरूप से अजर हैं किन्तु बुढ़ापा हमारे शरीर को आ घेरता है। **अमर** = ईश्वर का शरीर से संयोगरूप जन्म कभी नहीं होता इसलिए शरीर से वियोगरूप मृत्यु भी नहीं होती। इसलिए ईश्वर अमर है। **अभय** = भय वहां है जहां अज्ञान या अन्याय या अधर्म या असत्य आदि है। ईश्वर पूर्ण ज्ञानी है, कभी अन्याय, अधर्म या असत्याचरण नहीं करता इसीलिए अभय है। जीव भी इसी प्रकार आचरण कर निर्भय बन सकता है। **नित्य** = नित्य अर्थात् जिसकी सत्ता सदा से है और सदा रहेगी। ईश्वर एवं हम जीव दोनों ही नित्य पदार्थ हैं। शरीर के कारण उत्पन्न सम्बन्ध अनित्य, विनाशशील हैं पर ईश्वर के साथ हमारे सम्बन्ध नित्य हैं। ईश्वर हमारा स्थायी माता, पिता, गुरु, राजा आदि है। **पवित्र** = ईश्वर में कोई भी

अशुद्धि नहीं है। ईश्वर परम पवित्र है। उसका संग, उपासना आदि करने से जीव भी पवित्र हो जाते हैं। बुद्धि की निर्मलता विना निर्णयक्षमता का सटीक सदुपयोग सम्भव नहीं। मन की पवित्रता पाकर ही जीव शत प्रतिशत शिवसंकल्पमय हो सकता है। इन्द्रिय और संस्कारों में दोष से अविद्या पनपती है अतः इन्द्रियों को धर्माचरण में चलाने के लिए पवित्र होना आवश्यक है। इसी प्रकार धमार्थकाममोक्ष की सिद्धि हेतु शरीर की शुद्धि अर्थात् निरोगिता भी हमें अभीष्ट है। **सृष्टिकर्ता =** ईश्वर ही सारे संसार का रचयिता है। ये संसार उसने हम जीवों के भोग और अपवर्ग रूपी प्रयोजनों की सिद्धि के लिए बनाया है।

अथ ब्रह्मयज्ञः (वैदिक संध्योपासना)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।। (यजु ३६/३) (गायत्री मन्त्र का शब्दार्थ एवं भावार्थ तथा पद्यानुवाद पूर्व लिख आए हैं वहीं देख लें।)

अथाचमनमन्त्रः

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय ऽ आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु नः।। (यजु. ३६/१२)

शब्दार्थ :- शम - कल्याणकारी **नः -** हमारे लिए **देवीः** - सबका प्रकाशक **अभिष्टये** - मनोवांछित सुख के लिए **आपः** - सर्वव्यापक ईश्वर **भवन्तु** - होवे **पीतये** - मोक्षसुख के लिए **शंयोः** - सुख की **अभिस्रवन्तु** - वर्षा करे **नः** - हमारे लिए।

इस मन्त्र में मानव जीवन लक्ष्य को अभिष्टी तथा पीती शब्दों द्वारा भोग और अपवर्ग रूप में अभिव्यक्त किया गया है। संसार साधन है ब्रह्म साध्य है। त्यागपूर्वक भोग ही अपवर्ग का मार्ग प्रशस्त करेगा।

अथेन्द्रियस्पर्शमन्त्राः

ओं वाक् वाक्।। ओं प्राणः प्राणः।। ओं चक्षुश्चक्षुः।। ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्।। ओं नाभिः।। ओं हृदयम्।। ओं कण्ठः।। ओं शिरः।। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्।। ओं करतलकरकरपृष्ठे।।

vedicyasamaj.org

इस मन्त्र में मानव में षोडस कला विकास का रहस्य छुपा है तथा उन्नति की चार विधाएं निहित हैं। प्रथम है वाक्, प्राण, चक्षु और श्रोत्र इन सप्त ऋषियों के माध्यम से ब्रह्म डाल ब्रह्म निकाल अवधारणा, द्वितीय नाभि से आरम्भ कर सिर तक पंच कोष उत्थान, तीसरा बाहुभ्याम् यशोबलम् के माध्यम से विद्या-अविद्या को ज्ञान कर्म उपासना के सन्दर्भ में समझ व्यवहार रूप में क्रियान्वयन तथा चौथा है करतल एवं करपृष्ठ के रूप में दशों इन्द्रियों का अथर्वण सिद्ध करना।

साधना रूप में वाक् वाक् के मुख्य रूप से चार चरण हैं- परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। परा स्थल आत्म परमात्म परस्पर मिले हुए हैं। बुद्धि में अर्थ धरातल उतरती वाक् पश्यन्ती है। मन में वैचारिक धरातल पर वाक् का प्रकटन मध्यमा है। मुख गुहर में विभिन्न स्थल स्थूल रूप से शब्द प्रकटन वैखरी है। परा क्रम से वैखरी तक वाक् अविकृत रहे यही वाक्-वाक् साधना को अभीष्ट है। अर्थात् मनसा वाचा कर्मणा एकरूपता वाक् वाक् साधना सिद्धि चरण है।

प्राण के मुख्य पांच प्रकार हैं - १. प्राण : भीतर से बाहर, २. अपान : बाहर से भीतर, ३. समान : नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुंचाता, ४. व्यान : सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म, ५. उदान : जिससे कण्ठस्थ अन्नपान खेंचा जाता एवं बल पराक्रम होता तथा सूक्ष्मता की दृष्टि से जीव की ऊर्ध्वगति कराता।

चक्षुः चक्षुः साधनाओं के रूप में तीनों अनादि तत्त्व ईश्वर-जीव-प्रकृति के यथार्थ स्वरूप के दर्शन याने ज्ञान प्राप्त कर लेना उद्देश्य है।

यजुर्वेद में आया है श्रोत्र का सम्बन्ध दिशाओं से है। श्रोत्रं श्रोत्रम् साधना द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को प्राची (सामने), दक्षिणा (दायीं ओर), प्रतीची (पीछे), उदीची (बायीं ओर), ध्रुवा (नीचे), ऊर्ध्वा (ऊपर) तथा (अदिति) याने समस्त दिशाओं में अनुभव करना है।

नाभि, हृदय, कण्ठ और सिर ये शरीर के स्थिर अंग हैं, जबकि हाथ और पैर शरीर के चालन अंग हैं। हमारा अस्तित्व कोशों की दृष्टि से पांच भागों में विभक्त है। १. अन्नमय, २. प्राणमय, ३. मनोमय ४. विज्ञानमय, ५. आनन्दमय कोश। सुषुम्णा नाड़ी (रीढ़ में) नाभि अन्नमय कोश का केन्द्र है। हृदय प्राणमय कोश का, कण्ठ मनोमय कोश का तथा सिर में भ्रूमध्य

विज्ञानमय एवं तालु आनन्दमय कोश का केन्द्र है। (पाठक कृपया मुक्ति के विशेष साधन प्रकरण में पृष्ठ ४ पर इन कोशों से सम्बन्धित विवरण पढ़ लेवें।)

भुजाओं में यश और बल की बात से जो आध्यात्मिक अर्थ चिन्तन से सामने आया है उसके अनुसार यहां विद्या-अविद्या के रूप में शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म, शुद्धोपासना का प्रकरण प्रतीत होता है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के १४ वें मन्त्र में विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ-साथ जानते अविद्या द्वारा मृत्यु को तर जाने और विद्या द्वारा अमृत का भोग करने की बात आयी है। इस मन्त्र की सत्यार्थ प्रकाश ९ वें समुल्लास में व्याख्या करते महर्षि दयानन्द ने कर्म और उपासना को अविद्या में गिना है जबकि ज्ञान को विद्या माना है। यश प्रतीक है कर्म का और बल प्रतीक है उपासना का उपलक्षण से ज्ञान का भी ग्रहण हो जाएगा।

कर तल और कर पृष्ठ के माध्यम से इन्द्रियों का अथर्वण साधने की बात परिलक्षित होती है। दोनों हाथों में क्रमशः पांच-पांच याने कुल दस ऊंगलियां हैं जो पांच ज्ञानेद्रियों तथा पांच कर्मेन्द्रियों के प्रतीक हैं। त्वचा रंग की दृष्टि से देखा जाए तो किसी भी व्यक्ति का करतल उसके करपृष्ठ की अपेक्षा उजला हुआ करता है और करपृष्ठ करतल की अपेक्षा स्याह (कम उजला) हुआ करता है। हाथों में ऊंगलियों की संरचना इस तरह से ईश्वर ने की है कि इसके करतल वाले भाग से ही हम कर्म कर सकते हैं, करपृष्ठवाले भाग से नहीं। जब हमारा विवेक का स्तर बना रहता है हम अपने इन्द्रियों का सदुपयोग ही करते हैं अर्थात् उन्हें धर्मपथ पर ही प्रयत्नपूर्वक चलाते तथा अधर्म से हटाते हैं। यही इन्द्रियों का अथर्वण है। थर्व याने स्थिति-विचलन या कम्पन और अथर्व याने स्थिर। अर्थात् विवेकज्ञान द्वारा इन्द्रियों को धर्माचरण में ही लगाना और उन्हें अधर्माचरण से बचाए रखना ही इन्द्रियों का अथर्वण है।

अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्जनमन्त्राः

ओं भूः पुनातु शिरसि।। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः।।
ओं स्वः पुनातु कण्ठे।। ओं महः पुनातु हृदये।।
ओं जनः पुनातु नाभ्याम्।। ओं तपः पुनातु पादयोः।।
ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि।। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।।

अथ प्राणायाममन्त्राः

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्। (तैत्ति० प्रपा० १०/अनु० २७)

साधना आरोह एवं अवरोह रूप में द्विचक्रीय होती है। जहां प्राणायाम मन्त्रों में सबसे स्थूल भू लोक से आरम्भ करके सत्यम् लोक में सूक्ष्मतम परमात्मा तक का आरोहण है वहीं मार्जनमन्त्रों में समाधिस्थ होकर परमात्मा से युजित होकर अस्तित्व में पवित्रता अवतरण की प्रक्रिया क्रमशः सिर से पैर तक की दी गई है।

ईश्वर के भी भूः आदि नाम हैं। ईश्वर **भूः** अर्थात् हमारे प्राणों के भी प्राण हैं, जीवन के आधार हैं। स्वयं दुःखों से रहित स्वभक्तों के दुःखहर्ता होने से ईश्वर को **भुवः** कहते हैं। आनन्दस्वरूप, आनन्ददाता ईश्वर का नाम **स्वः** है। सबसे बड़े पूज्य एवं महान् होने से ईश्वर को **महः** कहते हैं। सकल जगदुत्पादक ईश्वर **जनः** हैं। दुष्टों के दण्डदाता एवं ज्ञानस्वरूप ईश्वर **तपः** हैं। अविनाशी होने से ईश्वर को **सत्यम्** कहते हैं।

प्राणायाम को नित्य करने से भीतर की अशुद्धियों का क्रमशः क्षय होता जाता है तथा समाधि को उत्पन्न करनेवाली विवेकख्याति प्राप्त होने तक व्यक्ति ज्ञान के क्षेत्र में उन्नति करता है। भौतिकवादी जीवन में आकण्ठ डूबा भूलोक का निवासी मानव जब इस जीवनशैली में दोष देख अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश किया चाहता है तभी भुवः स्तर याने अन्तःकरण के अधर्म का शमन एवं इन्द्रियों के दोषों के दमन द्वारा जीवन में होनेवाले समस्त दोषों को दूर करता अपने आन्तरिक क्लेशोत्पादक संस्कारों से तटस्थ होने की विद्या को प्राप्त करता है। अपने भीतर की अविद्या को दूर कर विद्या को स्थापित करता है। तभी वह स्व नामक क्षेत्र में प्रवेश कर पाता है। स्व-क्षेत्र स्थैर्य, सुख, शान्ति, समृद्धि, सन्तुष्टि, निर्भीकता एवं पवित्रता का क्षेत्र है। इस स्तर से महः स्तर में ऊपर उठता व्यक्ति अपनी आत्म ज्योति में महान परमात्मा की दिव्य ज्योति को समेट लेता है। साधना क्षेत्र में और ऊपर उठता साधक जनः स्तर में मनोमय कोष में मन एवं कर्मेन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करता है। इसी आरोह क्रम में अगले स्तर जनः लोक में प्रवेश पाते साधक विज्ञानमय कोष को साध लेता है। ऋतम्भर प्रज्ञावान तथा श्रुतम्भर मेधावान वह योगी प्रसंख्यान ज्ञान को प्राप्त हो चित्त में संचित जन्म-जन्मान्तरों के

वासनाओं को ईश्वर की सहाय से समाधिस्थ हो दग्धबीज अवस्था तक पहुचाता है। इस तरह से आरोह क्रम में साधक सत्यलोक के तृतीय धाम में ईश्वर, जीव एवं प्रकृति इन तीनों पदार्थों को यथार्थ रूप में जान जाता है। सतत विवेक वैराग्य और अभ्यास द्वारा साधक प्राथमकल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति एवं अतिक्रान्तभावनीय भूमियों कों क्रमशः आरोह क्रम में प्राप्त होता है।

मार्जन मन्त्र में सिर से आरम्भ करके एकेक अंग में ईश्वर के एकेक नाम को पिरोते पवित्रता कामना की गई है। सिर में आनन्दमय कोश, नेत्रों के बीच भ्रूमध्य में विज्ञानमय कोश, कण्ठ में मनोमय कोश, हृदय में प्राणमय कोश, नाभि में अन्नमय कोश के पवित्रीकरण की संकल्पना है। हमारे अस्तित्व के मुख्यतः दो भाग हैं एक व्यक्त दूसरा अव्यक्त। पंच कोश हमारे व्यक्त अस्तित्व का भाग हैं जबकि तीनों अनादि पदार्थ (ईश्वर, जीव, प्रकृति) अव्यक्त हैं। भूः पुनातु शिरसि से आरम्भ करके जनः पुनातु नाभ्याम् तक पंच कोशों की दृष्टि से व्यक्त अस्तित्व का पृथक्-पृथक् पवित्रता भावना उपरान्त तपः पुनातु पादयोः के माध्यम से समग्र व्यक्त अस्तित्व जो स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर नाम से भी जाना जाता है की एक-साथ पवित्रता भावना की गयी है। अगले मन्त्र "सत्यं पुनातु पुनः शिरसि" द्वारा हमारे अव्यक्त अस्तित्व में पवित्रता भावना तथा अन्तिम "खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र" मन्त्र द्वारा व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों ही प्रकार के अस्तित्वों में सर्वत्र पवित्रता भावना की गई है।

वैदिक संध्या के माध्यम से हम स्वयं का संस्कार प्रतिदिन प्रातः एवं सायं दोनों दिवस एवं रात्रि के सन्धिकाल में कर सकते हैं। संस्कार के तीन चरण हैं- १. दोषमार्जनम्, २. हीनांगपूर्ति, ३. अतिशयाधान। वैदिक संध्या में तीन सूक्त हैं- १. अघमर्षण, २. मनसापरिक्रमा तथा ३. उपस्थान सूक्त। अघमर्षण सूक्त के माध्यम से दोषमार्जनम् मनसा परिक्रमा सूक्त के माध्यम से हीनांगपूर्ति तथा उपस्थान सूक्त के माध्यम से अतिशयाधान किया जाता है।

सर्वप्रथम है अघमर्षण सूक्त। अघ पाप को कहते हैं। इस सूक्त में तीन मन्त्र हैं। पर तीनों में से किसी भी मन्त्र में पाप की या उसके समाप्ति की किसी भी प्रकार की प्रत्यक्ष रूप से चर्चा नहीं आई है। इन तीनों मन्त्रों में ईश्वर द्वारा सृष्टि रचना का वर्णन है।

अथाघमर्षणमन्त्राः

ओ३म् ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसो ऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।१।।

ऋतम् = वेद ज्ञान **च =** और **सत्यम्** = कार्य जगत् **अभीद्धात्** = ईश्वर के ज्ञानमय **तपसः** = सामर्थ्य से **अध्यजायत** = उत्पन्न हुआ। **ततः** ईश्वर के उसी ज्ञानमय अनन्त सामर्थ्य से **रात्री** = प्रलयरूपी रात्रि **अजायत** = उत्पन्न हुई। **ततः** = उसी ईश्वर से **समुद्रः** = पृथ्वी पर स्थित समुद्र **अर्णवः** = आकाश में स्थित जल उत्पन्न हुआ।

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो ऽअजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।।२।।

समुद्रत् = पृथ्वी पर स्थित समुद्र **अर्णवात्** = आकाश में स्थित जल की उत्पत्ति के **अधि** = पश्चात् **संवत्सरः** = क्षण, मुहूर्त, प्रहर आदि काल **अजायत** = उत्पन्न हुआ। **अहोरात्राणि** = दिन-रात **विदधत्** = रचे हैं **विश्वस्य** = सब संसार को **मिषतः** = सहज स्वभाव से **वशी** = वश में करनेवाले (ईश्वर) ने।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।।३।।

(ऋ.म. १०/सू. १९०/मं. १-३)

सूर्याचन्द्रमसौ = सूर्य चन्द्रमा आदि लोकों को **धाता** = धारण करनेवाले ईश्वर ने **यथापूर्वम्** = पूर्वकल्प के समान **दिवम्** = द्युलोक को **च** = और **पृथिवीम्** = पृथ्वी लोक को **च** = और **अन्तरिक्षम्** = अन्तरिक्ष लोक को **अथो** = और **स्वः** = आकाश में स्थित सब लोक-लोकान्तरों को **अकल्पयत्** = रचा है।

अघमर्षण या दोषमार्जनम् की दृष्टि से इन मन्त्रों के आध्यात्मिक अर्थ को समझना होगा। जैसी सृष्टि रचना ईश्वर बाहरी जगत् में करते हैं "यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे" कहावत के अनुसार हमारे भीतर भी करते हैं। तीनों मन्त्रों में से समुद्र, अर्णव, संवत्सर और अहोरात्राणि इन चार शब्दों का विशिष्ट अर्थ हमें अघमर्षण या दोषमार्जन की प्रक्रिया स्पष्ट कर दे सकता है।

meerayasamaj.org

हमारे व्यक्त अस्तित्व के दो भाग हैं एक भूमय स्थूल शरीर दूसरा भुवःमय सूक्ष्म शरीर। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार हमारा तन लगभग शत ट्रिलियन कोषिकाओं का महासमुद्र है। हर कोषिका में जीन स्तर पर इस जन्म से जुड़े संस्कार अंकित रहते हैं जिस के समुच्चय को मन्त्र में समुद्र कहा गया है। जबकि हमारे भुवःमय अस्तित्व में चित्त में जन्मजन्मान्तर के संस्कारों का समुच्चय है जिसे मन्त्र में अर्णव नाम से कहा गया है। हमारे चित्त में रागज, द्वेषज, मोहज कर्माशय है जो अविद्या को उत्पन्न करता है। अविद्या पर आरूढ होकर किए गए कर्म ही संसार में हमारे बन्धन का कारण बनते हैं। साधना-स्वाध्याय द्वारा विवेक जागृत करके राग-द्वेष-मोह के प्रति तटस्थता वृत्ति अपना कर ईश्वर कृपा से साधक दोषमुक्त हो कर्म बन्धनों को शिथिल कर सकता है।

संवत्सर वर्ष को तथा अहोरात्राणि दिन और रात को कहते हैं। पृथ्वी जब सूर्य के चारों ओर एक चक्र पूर्ण करती है तो एक वर्ष होता है। जैसे बाहरी सृष्टि में वर्ष में दो अयन, छः ऋतुएं, बारह मास, प्रत्येक मास में दो पक्ष आदि होते हैं और हर ऋतु में अलग अलग प्रकार की स्थिति होती है, अलग-अलग प्रकार का सुख हमें मिलता है उसी प्रकार हमारी भीतरी संरचना में चित्त ईश्वर ने त्रिगुणात्मक बनाया है। तीनों गुणों में से कभी कोई गुण दबा रहता तो कोई उभरा रहता है इससे चित्त की क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध ये पांच अवस्थाएं बनती है। इन अलग-अलग अवस्थाओं में जीव अलग-अलग लक्षणों से युक्त अपने को देखता है। इसी को संवत्सर कह सकते हैं। (चित्त की पांचों अवस्थाओं का विस्तृत विवरण पृष्ठ २ पर देखें) प्रथम तीन अवस्थाएं योगविहीन संसारी व्यक्ति की होती हैं जबकि एकाग्र एवं निरुद्ध अवस्था को योग कहते हैं।

पृथ्वी जब अपने कीली पर घूमती हुई एक चक्र पूरा करती है तो एक दिनरात होते हैं। हमारे जीवन के भी दो पहलू हैं। जब हमारे अन्तःकरण पर अविद्या हावी रहती है तभी हम अशुद्ध ज्ञान, अशुद्ध कर्म, अशुद्ध उपासना से अपने को संलिप्त पाते हैं, उसे रात्रि तथा विवेक को प्राप्त होकर शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म, शुद्ध उपासना युक्त जब हम होते हैं उस स्थिति को दिवस की उपमा दे सकते हैं।

इस प्रकार रजोगुण एवं तमोगुणयुक्त कर्मों से मन को रोक चित्त की

क्षिप्त एवं मूढ अवस्थाओं से ऊपर उठना तथा शुभ कर्मों में भी पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा का त्याग कर निष्कामता लाते हुए शुद्ध सत्त्व गुणयुक्त होने से समस्त पापों या अघों का नाश तथा चित्त की एकाग्र और निरुद्ध अवस्थाओं को प्राप्त कर योग में प्रवेश सम्भव है।

अथाचमन-मन्त्रः

ओं शन्नो देवीरभिष्टय ऽ आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु नः।। (यजु. ३६/१२) (इस मन्त्र का अर्थ पूर्व में लिख आए हैं पाठक कृपया वहीं देख लेवें।) विशेष इतना और जानें कि यह मन्त्र संध्या में दूसरी बार आ रहा है इसका एक विशिष्ट प्रयोजन जो हमें दीखा वह यह है कि दूसरी बार के उच्चारण में अभिष्टये पद का अर्थ बदल जाएगा.. अर्थात् जिनका चित्त अभी क्षिप्त तो कभी मूढ बना रहता है उन्हें अभिष्टये पद से मनोवांछित सुख याने संसार का लक्ष्य बना होना स्वाभाविक है पर अघमर्षण प्रक्रिया के बाद रजोगुण और तमोगुण के मल हट जाने पर विशुद्ध सात्विक विवेक-वैराग्यसम्पन्न साधक के लिए तो दुःखबहुल संसार हेय याने त्याज्य ही कहा गया तथा दृष्ट एवं आनुश्रविक विषय-वितृष्णा की वशीकारता प्राप्ति ही उपादेय माना गया। तो अब इस अवस्था में उसका अभीष्ट याने लक्ष्य ब्रह्म ही रहा। कहा भी गया है स्वाध्याय से इष्ट देवता से संप्रयोग याने पाना होता है और स्वाध्याय मोक्ष शास्त्रों के अध्ययन तथा प्रणवजप को कहते हैं।

अघमर्षण के बाद है मनसा परिक्रमा सूक्त जो संस्कार के द्वितीय चरण हीनांगपूर्ति से सम्बन्ध रखता है। हमारे जीवन की सबसे बड़ी कमी यह है कि हम ईश्वर के अस्तित्व को व्यवहार काल में भुला देते हैं। इस सूक्त में दिए मन्त्रों के द्वारा यह कमी दूर की जाती है।

अथ मनसापरिक्रमा-मन्त्रः

संस्कार के द्वितीय चरण हीनांगपूर्ति से इस मनसापरिक्रमा मन्त्रों का सम्बन्ध है। कोई मुझसे पूछे तो मैं यही कहूंगा कि मनुष्यजीवन की सबसे बड़ी कमी उसने अपने जीवन में से ईश्वर के योगदान को अनुभव धरातल पर नगण्य कर रखा है। अयोगी सामान्य मनुष्य फिर चाहे वह ईश्वर को माननेवाला ही क्यों न हो दिनभर नास्तिकवत ही होता है। संसार एवं

सांसारिक उपलब्धियों में खोए हुए से इस व्यक्ति के लिए ईश्वर आखरी उपादेय वस्तु है। अर्थात् सांसारिक क्षेत्र में जब उसके काम नहीं बनते या बिगड़ते हैं तभी इसे ईश्वर स्मरण होता है। ऐसी घोर अविद्या एवं उससे उपजी नास्तिकता से बाहर निकालने का काम इस सूक्त के मनन एवं साधना से सम्भव है।

छः मन्त्रों के इस सूक्त में प्रत्येक मन्त्र में तीन-तीन चरण हैं जो क्रमशः ज्ञान कर्म एवं उपासना से सम्बन्ध रखते हैं। हरेक मन्त्र का प्रथम चरण जो ज्ञानकाण्ड से सम्बन्धित है में भिन्न-भिन्न विवरण है। दिशा, अधिपति, रक्षिता एवं इषु से ईश्वर के अस्तित्व, उसके गुण-कर्म-स्वभाव, उसकी रचना द्वारा हमारे जीवन में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष योगदान का हमें ज्ञान होता है। द्वितीय चरण तेभ्यो नमो से एभ्यो अस्तु तक हर मन्त्र में समान ही है जो उस-उस मन्त्र के प्रथम चरणानुसार प्राप्त ज्ञान को आधार बना कर्म के लिए प्रेरित करता है। गहन साधना करता हुआ कोई भी साधक अपने चित्त में उठनेवाले विक्षेपों विशेषकर द्वेषज कर्माशय से जुड़े विक्षेपों को स्थूल शारीर धरातल पर दुःखद संवेदनाओं रूप में अनुभव करता ही है। तटस्थता साधना द्वारा इन संस्कारों के शमन एवं द्वेषज कर्माशय के क्षय की विधा तृतीय चरण में हम पाते हैं।

ओ३म्। प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।१।।

प्राची = सामने की (पूर्व) **दिक्** = दिशा का **अग्निः** = ज्ञानस्वरूप (ईश्वर) **अधिपतिः** = स्वामी है **असितः** = बन्धन रहित **रक्षिता** = रक्षा करनेवाला है। **आदित्याः** = प्राण, सूर्य की किरणें **इषवः** = बाण के समान हैं।

तेभ्यः = उनके लिए **नमः** = नमस्कार हो (अर्थात् यथायोग्य उपयोग करें) **अधिपतिभ्यः** = अधिपति (ईश्वर) के गुणों के लिए **नमः** = नमस्कार हो **रक्षितृभ्यः** = रक्षा करनेवाले (ईश्वर के गुण और उसके रचे पदार्थों) के लिए **नमः** = नमस्कार हो **इषुभ्यः** = बाणों के लिए **नमः** = नमस्कार हो **एभ्यः** = इन के लिए **अस्तु** = होवे **यः** = जो व्यक्ति

अस्मान् = हमसे **द्वेष्टि** = द्वेष करता है **यम्** = जिससे **वयम्** = हम **द्विष्मः** = द्वेष करते हैं **तम्** = उस द्वेष को **वः** = आप के **जम्भे** = न्यायरूपी जबड़े में **दध्मः** = (रखकर) नष्ट करते हैं।

दक्षिणा दिगिन्द्रो ऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।२।।

दक्षिणा = दक्षिण (दाईं) **दिक्** = दिशा का **इन्द्रः** = परमैश्वर्ययुक्त (ईश्वर) **अधिपतिः** = स्वामी है। **तिरश्चीराजी** = कीट पतंग आदि **रक्षिता** = रक्षा करनेवाले हैं **पितरः** = ज्ञानी लोग **इषवः** = बाण के समान हैं।

प्रतीची दिग्वरुणो ऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।३।।

प्रतीची = पीछे की (पश्चिम) **दिक्** = दिशा का **वरुणः** = सर्वोत्तम (ईश्वर) **अधिपतिः** = स्वामी है। **पृदाकू** = अजगर आदि विषधर प्राणी **रक्षिता** = रक्षा करनेवाले हैं **अन्नम्** = अन्न आदि भोग्य पदार्थ **इषवः** = बाण के समान हैं।

उदीची दिक् सोमो ऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।४।।

उदीची = बाईं (उत्तर) **दिक्** = दिशा का **सोमः** = शान्ति प्रदाता (ईश्वर) **अधिपतिः** = स्वामी है। **स्वजः** = अजन्मा **रक्षिता** = रक्षा करनेवाला है **अशनिः** = विद्युत् **इषवः** = बाण के समान हैं।

ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।५।।

ध्रुवा = नीचे की **दिक्** = दिशा का **विष्णुः** = सर्वव्यापक (ईश्वर) **अधिपतिः** = स्वामी है। **कल्माषग्रीवः** = वृक्ष आदि **रक्षिता** = रक्षा करनेवाले हैं **वीरुध** = लता बेल आदि **इषवः** = बाण के समान हैं।

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो

नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।६।। (अथर्व.कां. ३/सू. २७/मं. १-६)

ऊर्ध्वा = ऊपर की **दिक्** = दिशा का **बृहस्पतिः** = वेदशास्त्र तथा ब्रह्माण्ड का पति (ईश्वर) **अधिपतिः** = स्वामी है। **शिवत्रः** = शुद्ध स्वरूप **रक्षिता** = रक्षा करनेवाला है **वर्षम्** = वर्षा के बिन्दु **इषवः** = बाण के समान हैं।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न जो मुझे अपने साधना जीवन के प्रारम्भिक अवस्था में वर्षों तक सताता रहा वह यह है कि प्रत्येक मन्त्रस्थ तृतीय चरण में "(यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करता है, (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं, (तम्) उस द्वेष भावों को (वः) आपके पवित्र तेज में (जम्भे दध्मः) जलाकर दग्ध किया चाहते हैं।" ये जो भाव है उसके अनुसार मैं अपने अन्दर के द्वेष को दूर कर दूं यह तो ठीक है, पर अन्य जो मुझसे द्वेषयुक्त हैं उनके द्वेष को अपनी प्रार्थनामात्र से कैसे दूर करुँ? आप भी इस विषय में सोचें और अधिक जानकारी के लिए पाठकों से निवेदन है कृपया मेरे किसी ध्यान-योग शिविर में आप आएं..!!

अथोपस्थान-मन्त्राः

संस्कार के तृतीय चरण अतिशयाधान का सम्बन्ध उपस्थान मन्त्रों से है। इनकी विशेषता यह है कि हर मन्त्र में 'उत्' उपसर्ग प्रकर्षेण मिलता है। उनमें भी प्रथम मन्त्र में उत्-उत्तर-उत्तम क्रम में इसे हम पाते हैं। जिसका अभिप्राय है स्थूल अस्तित्व बोध से ऊपर उठकर सूक्ष्म अस्तित्व को मांजकर अपने दिव्य शाश्वत कारण अस्तित्व तक हमें उठना है।

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।।१।। (यजु.अ.३५ मं.१४)

उत् = श्रद्धावान होकर **वयम्** = हम लोग **तमसः** = अन्धकार से **परि** = पृथक् (रहित) **स्वः** = आनन्दस्वरूप (ईश्वर को) **पश्यन्तः** = देखते हुए **उत्तरम्** = प्रलय के बाद भी वर्तमान (रहनेवाले) **देवं देवत्रा** = देवों का भी देव **सूर्यम्** = जड़ और चेतन के आधार को **अगन्म** = प्राप्त करें **ज्योतिः** = स्वप्रकाशस्वरूप को **उत्तमम्** = सर्वोत्कृष्ट को।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्।।२।। (यजु.३३/मं.३१)

उत् = अच्छी प्रकार से **उ** = निश्चय से **त्यम्** = उस परमात्मा को **जातवेदसम्** = उत्पन्न सम्पूर्ण जगत् को जाननेवाले को **देवम्** = देवों के भी देव को **वहन्ति** = जनाते हैं। **केतवः** = जगत् के नियामक गुण एवं वेदमन्त्र **दृशे** = देखनेके लिए (विद्याप्राप्ति) **विश्वाय** = विश्व को (सम्पूर्ण) **सूयम्** = जड़ और चेतन के आधार ईश्वर को।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी ऽ अन्तरिक्ष ँ सूर्य ऽ आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ।।३।। (यजु.अ. ७ मं. ४२)

चित्रम् = अद्भुतस्वरूप **देवानाम्** = विद्वानों के हृदय में **उदगात्** = अच्छी प्रकार प्रकट होता है (हुआ है)। **अनीकम्** = काम क्रोधादि के नाश के लिए सर्वोत्तम बल है। **चक्षुः** = सम्पूर्ण लोकों तथा विद्याओं को जानने व प्रकाश करनेवाला है। **मित्रस्य** = राग-द्वेष रहित का, **वरुणस्य** = श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाव वाले मनुष्य का, **अग्नेः** = भौतिक अग्नि का **आप्रा** = सब ओर से धारण करके रक्षा करता है। **द्यावापृथिवी** = द्युलोक और पृथ्वीलोक को **अन्तरिक्षम्** = अन्तरिक्ष लोक को **सूर्यः** = सबका प्रकाशक **आत्मा** = आधार (व्यापक) है, **जगतः** = चेतन जगत का (में) **तस्थुषः** = जड़ जगत् (में) **च** = और **स्वाहा** = मैं यह सत्य कहता हूं।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।४।। (यजु.अ.३६/मं.२४)

तत् = उस ब्रह्म को **चक्षुः** = सब का द्रष्टा **देवहितम्** = विद्वानों और धर्मात्माओं का हितकारी **पुरस्तात्** = सृष्टि से पूर्व (था) **शुक्रम्** = शुद्ध स्वरूप (अब) है, **उच्चरत्** = प्रलय पश्चात भी रहता है। **पश्येम** = हम देखें (ईश्वर को) **शरदः शतम्** = सौ वर्ष तक **जीवेम** = हम जीवें **शरदः शतम्** = सौ वर्ष तक **शृणुयाम** = हम सुनें (ईश्वर को) **शरदः शतम्** = सौ वर्ष तक **प्रब्रवाम** = उपदेश करें (ब्रह्म का) **शरदः शतम्** = सौ वर्ष तक **अदीनाः** = दीनता और पराधीनता से रहित = स्वतन्त्र **स्याम** = रहें

vedicsadhanasansthan.org

शरदः शतम् = सौ वर्ष तक **भूयश्च** = अधिक भी **शरदः शतात्** = सौ वर्ष से (अधिक भी जीते हुए ईश्वर को देखें, सुनें, सुनावे)

अथ गुरुमन्त्रः

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।। (यजु.३६/३) इस मन्त्र का अर्थ पूर्व लिख आए हैं पाठक कृपया वहीं देखें।

अथ समर्पणम्

हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयानेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।।

हे ईश्वर आप करुणा के सागर हैं। हमने आप ही की सहाय से अत्यन्त श्रद्धावान् होकर आपकी उपासना वेदमन्त्रों के माध्यम से की है। हमें इसी जीवन में जीवन के चारों पुरुषार्थ के फलों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त कराइए।

अथ नमस्कार-मन्त्रः

ओ३म्। नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।। (यजु. १६/४१)

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

नमः = नमस्कार हो **शम्भवाय** = सुखस्वरूप ईश्वर के लिए **च** = और **मयोभवाय** = सब सुखों के देनेवाले के लिए **नमः** = नमस्कार होवे **शङ्कराय** = धर्मयुक्त कर्मों को करनेवाले के लिए **मयस्कराय** = धर्मयुक्त कर्मों में नियुक्त करनेवाले के लिए **च** = और **नमः** = नमस्कार हो **शिवाय** = अत्यन्त मंगलस्वरूप ईश्वर के लिए **च** = और **शिवतराय** = मोक्षसुख प्रदाता के लिए **च** = और।

संध्या-भावार्थ चिन्तन

(ओ३म्) यह आप का मुख्य नाम है। इस नाम के साथ आप के सब नाम लग जाते हैं। (भूः) आप प्राणों के भी प्राण हैं। (भुवः) आप सब दुःखों से रहित और सकल दुःख छुडाने हारे हैं। (स्वः) आप स्वयं सुख स्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखों के देने हारे हैं। (सवितुः) हे

thearyasamaj.org

सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता ! सूर्यादी प्रकाशकों के भी प्रकाशक ! समग्र ऐश्वर्यों के दाता ! (देवस्य) आपके अत्यन्त कामना करने योग्य (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ, ग्रहण करने योग्य, सर्वत्र विजयी कराने हारे (भर्गः) क्लेश नाशक, परम पवित्र शुद्ध स्वरूप तेज का (धीमहि) हम ध्यान करते हैं, ध ारण करते हैं। (यः) हे परमपिता परमात्मा आप ! (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) उत्तम गुणकर्म स्वभाव में प्ररित कीजिए; दुष्ट गुणकर्म स्वभाव से छुड़ाइए।

हे प्रभो ! इस जीवन को चलाने हेतु जिन-जिन भौतिक सुख-साधनों की मुझे अपेक्षा है, आप की कृपा से मैं सहजता से प्राप्त कर सकूं तथा इन्हें त्यागपूर्वक भोगते हुए आप की प्राप्ति के लिए, मोक्षानन्द के लिए भी विशेष पुरुषार्थ कर सकूं। आप सब ओर से हम पर सुखों की वर्षा कीजिए।

सन्ध्या के इस दिव्य लक्ष्य को हम सब मिलकर प्राप्त कर सकें इसलिए हमारा शरीर स्वस्थ हो, इन्द्रियां सुदृढ़ हों। हमारे मन-बुद्धि-अन्तःकरण एवं इन्द्रियों में आप निर्मलता प्रदान करें जिससे हम इन्हें धर्ममार्ग में सदा चलाते रहें, अधर्म से हटाते रहें।

हे प्राणाधार प्राणप्रिय प्रभो..! आप भूः प्राणों के भी प्राण भुवः सकलदुःख हर्ता, स्वः आनन्दस्वरूप, महः सबसे बड़े पूज्य तथा महान, जनः सकल जगदुत्पादक, तपः दुष्टों के दण्डदाता एवं ज्ञानस्वरूप तथा सत्यम् अविनाशी हैं।

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता आप ने हम जीवों को कर्मफल भुगाने तथा मोक्षानन्द देने हेतु इतने विशाल ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करके दान में दिया है। बदले में हम से कभी कुछ नहीं चाहा, कभी कुछ नहीं लिया। आप महान् हैं, आप की सृष्टिरचना महान् है, आप के दण्ड-विधान भी महान् हैं। पाप कर्मों को करके उनके दुःखरूप फलों से हम नहीं बच सकते अतः हमारे अन्तःकरण को आप निर्मल बना दीजिए जिससे सारे पाप कर्मों को हम शीघ्र ही छोड़ सकें।

हे सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामिन् ! हम आप के अन्दर डूबे हुए हैं। आप हमारे दाएं-बाएं, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, भीतर-बाहर सर्वत्र विद्यमान हैं तथा हमें देख-सुन-जान रहे हैं। आप के ही अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु, बृहस्पति आदि अनेक नाम हैं। अपनी सृष्टि रचना के द्वारा तथा

अपने पवित्र गुण-कर्म-स्वभावों के द्वारा निरन्तर हमारी रक्षा कर रहे हैं। आप के रक्षक गुणों को हम बार-बार नमन करते हैं। जो प्राणी हमसे अज्ञानवशात् अथवा जिससे हम स्वार्थादि के कारण द्वेष करते हैं, हमारी उन समस्त दुर्भावनाओं को आप के पवित्रतम तेज में जलाकर भस्म कर देते हैं, जिससे परस्पर हम कभी द्वेष न करें किन्तु सदा प्रेमपूर्वक मित्रभाव से वर्तें।

हे सच्चिदानन्द-अनन्त-स्वरूप ! हम आप की उपासना करते हैं। हे नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव ! हम आप को अपने हृदय मन्दिर में आवाहन करते हैं। हे अद्वितीय-अनुपम-जगदादिकारण ! आप हमारे हृदय में आओ। हे अज-निराकार-सर्वशक्तिमान्-न्यायकारिन् ! अपने दिव्य अस्तित्व का हमें यथावत् भान कराओ। हे जगदीश-सर्वजगदुत्पादकाधार ! अपने पावन संस्पर्श से हमारे अन्दर सुसंस्कारों को उत्पन्न करके उन्हें प्रवृद्ध तथा पुष्ट कराओ। हे सनातन-सर्वमंगलमय-सर्वस्वामिन् ! आप की कृपा से हम भी धार्मिक, न्यायप्रिय, पुरुषार्थी, परोपकारी, विनम्र, सहनशील, माता-पिता तथा गुरुजनों के आज्ञाकारी एवं राष्ट्रभक्त बन सकें। हे अविद्यान्धकार निर्मूलक-विद्यार्क प्रकाशक ! आप की कृपा से सभी प्रकार के स्वार्थ एवं संकीर्णताओं से हम ऊँचे उठ सकें। हे दुर्गुणनाशक-सद्गुणप्रापक-सर्वबलदायक ! हम अपने अन्दर छिपे काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा, चुगली, अहंकार, आलस्य, प्रमाद आदि सभी दोषों से आप की कृपा से छुटकारा पा सकें। हे धर्मसुशिक्षक-पुरुषार्थप्रापक ! दुर्गुणों के परित्याग एवं सद्गुणों को ध ारण करते हुए आप की कृपा से हम सौ वर्ष तक तथा उसके बाद भी स्वस्थतापूर्वक जी सकें, आप को देख सकें, आप के विषय में सुन सकें, औरों को भी बता सकें तथा जब तक जीएं स्वतन्त्र, अदीन रहें।

इसीलिए प्रतिदिन प्रातः सायं पवित्र गायत्री आदि वेद मन्त्रों से हम आपकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं। हमें आधिदैविक-आधि ाभौतिक-आध्यात्मिक दुःखों से शीघ्र ही छुड़ा कर धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को इसी जन्म में प्राप्त कराइए।

आप सुखस्वरूप हैं, आपको हम नमन करते हैं। आप कल्याणकारी हैं, आपको हम नमन करते हैं। आप मोक्षानन्द प्रदाता हैं, आप को बारंबार हम नमन करते हैं। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

प्रातःकालीन-मन्त्राः

ओ३म्। प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना। प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम।।१।।

हे स्त्रीपुरुषों ! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग (प्रातः) प्रभात बेला में (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्ययुक्त, (प्रातः) (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान्, (प्रातः) (अश्विना) सूर्य चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है, उस परमात्मा की (हवामहे) स्तुति करते हैं, और (प्रातः) (भगम्) भजनीय सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त, (पूषणम्) पुष्टिकर्ना, (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करनेहारे, (प्रातः) (सोमम्) अन्तर्यामि प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलानेहारे और सर्वरोगनाशक जगदीश्वर की (हुवेम) स्तुति-प्रार्थना करते हैं, वैसे प्रातः समय में तुम लोग भी किया करो।।१।।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता। आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह।। २।।

(प्रातः) पांच घड़ी रात्रि रहे (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्वर्य के दाता, (उग्रम्) तेजस्वी, (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) पुत्ररूप सूर्य की उत्पत्ति करनेहारे, और (यः) जो कि सूर्यादि लोकों का (विधर्त्ता) विशेष करके धारण करनेहारा (आध्रः) सब ओर से धारणकर्ता, (यं चित्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जाननेहारा, (तुरश्चित्) दुष्टों को भी दण्डदाता, और (राजा) सब का प्रकाशक है, (यम्) जिस (भगम्) भजनीयस्वरूप को (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूं, और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सब को (आह) उपदेश करता है कि तुम, जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धरण करनेहारा हूं, उस = मेरी उपासना किया करो, और मेरी आज्ञा में चला करो, इस से (वयम्) हम लोग उस की (हुवेम) स्तुति करते हैं।।२।।

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः। भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम।। ३।।

हे (भग) भजनीयस्वरूप, (प्रणेतः) सब के उत्पादक, सत्याचार में प्रेरक, (भग) ऐश्वर्यप्रद (सत्यराधः) सत्य धन को देनेहारे, (भग) सत्याचरण करनेहारों को ऐश्वर्यदाता आप

परमेश्वर ! (नः) हम को (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) दीजिये, और उस के दान से हमारी (उदव) रक्षा कीजिये । हे (भग) आप (गोभिः) गाय आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को (नः) हमारे लिये (प्रजनय) प्रकट कीजिये, हे (भग) आप की कृपा से हम लोग (नृभिः) उत्तम मनुष्यों से (नृवन्तः) बहुत वीर मनुष्यवाले (प्र स्याम) अच्छे प्रकार होवें।।३।।

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्। उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम।।४।।

हे भगवन् ! आप की कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इसी समय (प्रपित्वे) प्रकर्षता = उत्तमता की प्राप्ति में (उत) और (अह्नाम्) इन दिनों के (मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान् (स्याम) होवें, (उत) और हे (मघवन्) परमपूजित असंख्य धन देनेहारे ! (सूर्यस्य) सूर्यलोक के (उदिता) उदय में (देवानाम्) पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप्त लोगों की (सुमतौ) अच्छी उत्तम प्रज्ञा (उत) और सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) सदा प्रवृत्त रहें।।४।।

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वां भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह।।५।। (ऋ.मं.७/सू.४१/मं.१-५)

हे (भग) सकलैश्वर्यसम्पन्न जगदीश्वर ! जिस से (तम्) उस (त्वा) आप की (सर्वः) सब सज्जन (इज्जोहवीति) निश्चय करके प्रशंसा करते हैं, (सः) सो आप हे (भग) ऐश्वर्यप्रद ! (इह) इस संसार और (नः) हमारे गृहाश्रम में (पुर एता) अग्रगामी और आगे-आगे सत्यकर्मों में बढ़ानेहारे (भव) हूजिए; और जिस से (भग एव) सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता होने से आप ही हमारे (भगवान्) पूजनीय देव (अस्तु) हूजिए, (तेन) उसी हेतु से (देवाः वयम्) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः) सकलैश्वर्यसम्पन्न होके सब संसार के उपकार में तन, मन, धन से प्रवृत्त (स्याम) होवें।।५।।

(म.दयानन्द- संस्कार विधि)

शयनकालीन-मन्त्राः

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।१।।

हे दयानिधे आपकी कृपा से जो मेरा मन जागते में दूर-दूर जाता दिव्य गुणयुक्त रहता है, वही सोते हुए मेरा मन सुषुप्ति को प्राप्त होता वा स्वप्न में दूर-दूर जाने के समान व्यवहार करता सब प्रकाशकों का प्रकाशक एक ***वह मेरा मन शिव संकल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के अर्थ कल्याण का संकल्प करनेहारा होवे किसी की हानि करने की इच्छायुक्त कभी न होवे।***

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्व यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।२।।

हे सर्वान्तर्यामी जिससे कर्म करनेहारे धैर्ययुक्त विद्वान् लोग यज्ञ और युद्धादि में कर्म करते हैं, जो अपूर्व सामर्थ्ययुक्त, पूजनीय और प्रजा के भीतर रहनेवाला है ***वह मेरा मन धर्म करने की इच्छायुक्त होकर अधर्म को सर्वथा छोड़ देवे***।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऽ ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।३।।

जो उत्कृष्ट ज्ञान और दूसरे को चितानेहारा निश्चयात्मकवृत्ति है, और जो प्रजाओं के भीतर प्रकाशयुक्त और नाशरहित है, जिसके बिना कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता, ***वह मेरा मन शुद्ध गुणों की इच्छा करके दुष्ट गुणों से पृथक् रहे।***

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।४।।

हे जगदीश्वर! जिससे सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्यत, वर्त्तमान व्यवहारों को जानते, जो नाशरहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलाके सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है, जिसमें ज्ञान और क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है, उस योगरूप यज्ञ को जिससे

बढ़ाते हैं ***वह मेरा मन योग विज्ञानयुक्त होकर अविद्या से सदा पृथक् रहे।***

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।। ५।।

हे परम विद्वन् परमेश्वर! आप की कृपा से मेरे मन में जैसे रथ के मध्य धुरा में आरा लगे रहते हैं वैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद और जिसमें अथर्ववेद भी प्रतिष्ठित होता है, और जिसमें सर्वज्ञ सर्वव्यापक प्रजा का साक्षी चित्त चेतन विदित होता है ***वह मेरा मन अविद्या का अभाव कर विद्याप्रिय सदा रहे।***

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते ऽभीशुभिर्वाजिन ऽइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।। ६।।

(यजु.३४/१-६)

हे सर्वनियन्ता ईश्वर! जो मेरा मन रस्सी से घोड़ों के समान अथवा घोड़ों के नियन्ता सारथि के तुल्य मनुष्यों को अत्यन्त इधर-उधर डुलाता है, जो हृदय में प्रतिष्ठित गतिमान् और अत्यन्त वेगवाला है, ***वह सब इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक के धर्मपथ में चलाया करे। ऐसी मुझ पर कृपा कीजिए।*** (स.प्र.सप्तम समु. म.दयानन्द)

योग के विघ्न

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वा-
नवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ योग. १/३० ॥

शब्दार्थ - (व्याधि.....अनवस्थितत्वानि) व्याधि = धातु, रस तथा इन्द्रियों की विषमता। स्त्यानम् = सत्य कर्मों में अप्रीति। संशयः = एक विषय में दो प्रकार का परस्पर भिन्न-भिन्न ज्ञान अर्थात् यह पदार्थ ऐसा है अथवा ऐसा नहीं है। प्रमादः = यम-नियमादि समाधि के साधनों का आचरण न करना (ध्यान नहीं देना, महत्त्वहीन समझकर उपेक्षा करना, लापरवाही) आलस्यम् = शरीर या चित्त के भारीपन के कारण योगाभ्यास में प्रवृत्त न होना। अविरतिः = वैराग्य का अभाव अर्थात् विषयों में राग। भ्रान्तिदर्शनम् = विपरीत ज्ञान। अलब्धभूमिकत्वम् = समाधि की प्राप्ति न होना। अनवस्थितत्वम्

= समाधि प्राप्त होने पर भी पुनः चित्त का स्थिर न होना । (चित्तविक्षेपाः) चित्त को विक्षिप्त करने वाले कारण । (ते) वे [ये] (अन्तरायाः) योग के विघ्न हैं ।

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ योग. १/३१ ॥

शब्दार्थ - (दुःख) दुःख = आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक आदि तीन प्रकार के । (दौर्मनस्य) = इच्छापूर्ति न होने पर चित्त का क्षोभ, (अङ्गमेजयत्वम्) अङ्गों का कंपन, (श्वासः) प्राणायाम करते समय इच्छा के विरुद्ध विशेषरूप से गतिपूर्वक श्वास का अन्दर आना, (प्रश्वासः) इसी प्रकार शीघ्रतापूर्वक श्वास का बाहर निकलना (विक्षेप-सहभुवः) विक्षेपों के साथ-साथ होने वाले ।

योगदर्शन साधनपाद अष्टांगयोग के सूत्र

१. योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा-विवेकख्यातेः । (२/२८)

शब्दार्थ - (योग-अङ्ग-अनुष्ठानाद्) मन-वाणी-शरीर से यम-नियम आदि योग के आठ अङ्गों का आचरण करने से (अशुद्धि-क्षये) अशुद्धि का नाश होने पर (ज्ञान-दीप्तिः) ज्ञान का प्रकाश (आविवेकख्यातेः) विवेकख्यातिपर्यन्त हो जाता है ।

सूत्रार्थ - मन, वाणी, शरीर से योग के आठों अङ्गों के आचरण से अशुद्धि का नाश होने पर विवेकख्यातिपर्यन्त ज्ञान का विकास होता है ।

२. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार धारणा-ध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि । (२/२९)

शब्दार्थ - (यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयः) यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि (अष्टौ) ये योग के आठ (अङ्गानि) अङ्ग हैं ।

सूत्रार्थ - यम-नियमादि योग के आठ अङ्ग हैं ।

३. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः । (२/३०)

शब्दार्थ - (अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रहाः) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये (यमाः) यम हैं ।

सूत्रार्थ - अहिंसादि ये पाँच यम कहलाते हैं । अर्थात् योगप्राप्ति के ये पाँच आवश्यक कर्त्तव्य हैं ।

४. जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् । (२/३१)

शब्दार्थ - (जाति-देश-काल-समय-अनवच्छिन्नाः) जाति = मनुष्य, पशु आदि । देश = पुण्य स्थल । काल = पर्व, अमावस्यादि तिथियाँ । समय = नियम विशेष । इन से (अनवच्छिन्नाः) अबाधित (सार्वभौमाः) सब अवस्थाओं में पालन करने योग्य

(महाव्रतम्) महाव्रत हैं ।

सूत्रार्थ - जाति, स्थान, काल, नियम विशेष । इन सबसे अबाधित सब अवस्थाओं में पालन करने योग्य अहिंसा आदि महाव्रत हैं ।

५. शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः । (२/३२)

शब्दार्थ - (शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधानानि) शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान (नियमाः) ये नियम हैं ।

सूत्रार्थ - शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये पाँच नियम कहलाते हैं।

६. वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् । (२/३३)

शब्दार्थ - (वितर्क-बाधने) वितर्कों से बाधा उपस्थित होने पर (प्रतिपक्ष-भावनम्) विरुद्ध पक्ष का विचार करना चाहिये ।

सूत्रार्थ - यम-नियमों के पालन में वितर्कों द्वारा बाधा उपस्थित होने पर विरुद्ध पक्ष का विचार करना चाहिये । अर्थात् यम-नियम के भङ्ग होने से बहुत बड़ी हानि होती है ऐसा मानकर उन वितर्कों को रोक देना चाहिये ।

७. वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् । (२/३४)

शब्दार्थ - (वितर्काः) वितर्क हैं (हिंसा-आदयः) हिंसा आदि [यम-नियमों के विरोधी भाव] (कृत-कारित-अनुमोदिताः) स्वयं किये हुये, दूसरों से करवाये हुये और समर्थन किये हुये (लोभ-क्रोध-मोहपूर्वकाः) लोभ-क्रोध-मोह कारण वाले (मृदु-मध्य-अधिमात्रा) मंद, मध्य और तीव्र भेद वाले (दुःख-अज्ञान-अनन्तफलाः) अत्यधिक दुःख और अत्यधिक अज्ञान फल वाले (इति) इस प्रकार (प्रतिपक्ष-भावनम्) प्रतिपक्ष का विचार करे अर्थात् दूर रहने का प्रयत्न करे ।

सूत्रार्थ - यम-नियम के विरोधी भाव 'वितर्क' कहलाते हैं जो कि स्वयं किये हुये, दूसरों से करवाये हुये और अनुमोदन किये हुये तीन प्रकार के होते हैं । ये तीनों ही लोभ, क्रोध और मोह कारण वाले होते हैं । मृदु, मध्य और अधिमात्र भेद वाले होते हैं । इनका फल अत्यधिक दुःख और अत्यधिक अज्ञान होता है । इस प्रकार प्रतिपक्ष का विचार कर इनको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

८. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। (२/३५)

शब्दार्थ - (अहिंसा-प्रतिष्ठायाम्) अहिंसा का आचरण परिपक्व हो जाने पर (तत्-सन्निधौ) सब प्राणियों के प्रति उस योगी का (वैर-त्यागः) वैरभाव छूट जाता है और उसके उपदेश को समझने वाले तथा वैसा आचरण करने वालों का भी यथायोग्य अपने आचरण के

अनुसार अन्य प्राणियों के प्रति वैरभाव छूट जाता है ।

सूत्रार्थ - अहिंसा का आचरण परिपक्व हो जाने पर उस योगी का सब प्राणियों के प्रति वैरभाव छूट जाता है और उसके उपदेश को समझने वाले और उसका आचरण करने वाले का भी अपने आचरण के अनुसार अन्य प्राणियों के प्रति वैरभाव छूट जाता है ।

९. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् । (२/३६)

शब्दार्थ - (सत्य-प्रतिष्ठायाम्) मन, वाणी और शरीर से सत्य आचरण के परिपक्व हो जाने पर (क्रिया-फल-आश्रयत्वम्) योगी का कर्म उत्तम फल वाला होता है और उसके आचरण का प्रभाव अन्य प्राणियों पर भी यथायोग्य पड़ता है ।

सूत्रार्थ - मन, वाणी और शरीर से सत्य आचरण के परिपक्व हो जाने पर योगी का कर्म उत्तमफल वाला हो जाता है और उसके आचरण का प्रभाव अन्य प्राणियों पर भी यथायोग्य पड़ता है ।

१०. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् । (२/३७)

शब्दार्थ - (अस्तेय-प्रतिष्ठायाम्) जब योगी मन-वाणी-शरीर से अच्छे प्रकार से चोरी का परित्याग कर देता है तब (सर्व-रत्न-उपस्थानम्) सब उत्तम पदार्थों की प्राप्ति होती है । अर्थात् जो-जो उत्तम पुरुषार्थ करता है उसका उत्तम फल उसको मिलता है और उसके चोरी के परित्याग करने से अन्य मनुष्य उसको उत्तम पदार्थ देते हैं । ईश्वर की ओर से भी ज्ञान, बल और सुख की प्राप्ति होती है ।

सूत्रार्थ - जब योगी मन-वाणी-शरीर से अच्छे प्रकार से चोरी का परित्याग कर देता है तब सब उत्तम पदार्थों की प्राप्ति होती है । अर्थात् उत्तम पुरुषार्थ के अनुकूल फल प्राप्ति, अन्यों से सहायता तथा ईश्वर से ज्ञान, बल और सुख की प्राप्ति होती है ।

११. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः । (२/३८)

शब्दार्थ - (ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठायाम्) जब योगी मन, वचन और शरीर से ब्रह्मचर्य का पालन दृढ़ बना लेता है तब (वीर्य-लाभः) बौद्धिक और शारीरिक बल की प्राप्ति होती है । इससे वह अपनी तथा अन्यों की रक्षा करने में तथा विद्याप्राप्ति एवं विद्यादान में समर्थ हो जाता है ।

सूत्रार्थ - जब योगी मन, वचन और शरीर से ब्रह्मचर्य का पालन दृढ़ बना लेता है तब बौद्धिक और शारीरिक बल की प्राप्ति होती है । उससे वह अपनी तथा अन्यों की रक्षा करने में, विद्याप्राप्ति तथा विद्यादान में समर्थ हो जाता है ।

१२. अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः। (२/३९)

शब्दार्थ - (अ-परिग्रह-स्थैर्ये) जब योगी हानिकारक तथा अनावश्यक वस्तुओं को तथा

हानिकारक एवं अनावश्यक विचारों को दृढ़तापूर्वक त्याग देता है तब (जन्म-कथन्ता-सम्बोधः) वर्त्तमान जन्म में क्या कर रहा हूँ ? शरीर क्या है ? इन्द्रियाँ क्या हैं ? मैं क्या हूँ ? आदि विषयक जिज्ञासा तथा ज्ञान हो जाता है । इसी प्रकार भूत तथा भावी जन्म से सम्बन्धित जिज्ञासा तथा सामान्य आनुमानिक ज्ञान हो जाता है ।

सूत्रार्थ - अपरिग्रह की स्थिरता होने पर भूत, भविष्यत् तथा वर्त्तमान जन्म से सम्बन्धित जिज्ञासा और आनुमानिक ज्ञान हो जाता है ।

१३. शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः । (२/४०)

शब्दार्थ - (शौचात्) बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि के हो जाने पर (स्व-अङ्ग-जुगुप्सा) अपने अङ्गों से घृणा करता है = अनासक्त हो जाता है (परैः) तथा अन्यों के शरीर से भी (अ-संसर्गः) आसक्तिरहित हो जाता है ।

सूत्रार्थ - जब योगी की बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि हो जाती है तब वह अपने शरीर से अनासक्त हो जाता है तथा अन्यों के शरीरों से भी सम्पर्क नहीं रखना चाहता ।

१४. सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रिय जयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च । (२/४१)

शब्दार्थ - (सत्त्वशुद्धि-सौमनस्य-ऐकाग्र्य-इन्द्रियजय-आत्मदर्शन-योग्यत्वानि) (शौच से) बुद्धि की शुद्धि, मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियों पर नियन्त्रण तथा आत्मा व परमात्मा को जानने की योग्यता प्राप्त होती है (च) और ।

सूत्रार्थ - और जब योगी की बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि हो जाती है तब बुद्धि की शुद्धि आदि योग्यता प्राप्त होती है ।

१५. सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः । (२/४२)

शब्दार्थ - (सन्तोषात्) पूर्ण सन्तोष का पालन करने से (अनुत्तम-सुखलाभः) सांसारिक समस्त सुखों से उत्तम सुख की प्राप्ति होती है ।

सूत्रार्थ - पूर्ण सन्तोष का पालन करने वाले योगी को समस्त सांसारिक सुखों से उत्तम सुख की प्राप्ति होती है ।

१६. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः । (२/४३)

शब्दार्थ - (काय-इन्द्रिय-सिद्धिः) कायसिद्धिः - स्वस्थ, बलवान्, स्वच्छ और स्फूर्त्तिमान शरीर होना। इन्द्रियसिद्धिः - विषयों को दूर से तथा स्पष्ट देखने-सुनने आदि की सामर्थ्यवृद्धि (अशुद्धि-क्षयात्) अशुद्धि = वात, पित्त, कफ की विषमता से उत्पन्न हुये विकार, तमोगुणादि से उत्पन्न आलस्यादि दोषों के नाश हो जाने से (तपसः) तप के अनुष्ठान से ।

सूत्रार्थ - तप के अनुष्ठान द्वारा वात, पित्त, कफ की विषमता से उत्पन्न विकार, तमोगुण

से उत्पन्न आलस्यादि दोषों के नाश हो जाने से शरीर स्वस्थ, बलवान्, स्वच्छ और स्फूर्तिमान् होता है तथा इन्द्रियों में विषयों को दूर से तथा स्पष्ट देखने-सुनने आदि की सामर्थ्य बढ़ जाती है ।

१७. स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः । (२/४४)

शब्दार्थ - (स्वाध्यायात्) वेदादि मोक्षशास्त्रों के पठन-पाठन, प्रणव तथा गायत्री आदि मन्त्रों के अर्थ सहित जप से (इष्ट-देवता-सम्प्रयोगः) ईश्वर, वैदिक विद्वान्, योगी आदि धार्मिक महापुरुषों के साथ सम्बन्ध हो जाता है (और उनसे विविध उत्तम कार्यों में सहायता प्राप्त हो जाती है) ।

सूत्रार्थ - वेदादि मोक्ष शास्त्रों के पठन-पाठन, प्रणव तथा गायत्री आदि मन्त्रों के अर्थ सहित जप से ईश्वर, वैदिक विद्वान्, योगी आदि धार्मिक महापुरुषों के साथ सम्बन्ध हो जाता है तथा उनसे विविध उत्तम कार्यों में सहायता प्राप्त होती है ।

१८. समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् । (२/४५)

शब्दार्थ - (समाधि-सिद्धिः) समाधि की प्राप्ति होती है (ईश्वर-प्रणिधानात्) ईश्वर की भक्ति विशेष तथा समस्त कर्मों को ईश्वरार्पित कर उनका कोई लौकिक फल न चाहने से ।

सूत्रार्थ - ईश्वर की भक्ति विशेष तथा समस्त कर्मों को ईश्वरार्पित कर उनका कोई लौकिक फल न चाहने से समाधि की प्राप्ति होती है अर्थात् ईश्वर, जीव, प्रकृति तथा शरीरादि का यथार्थज्ञान हो जाता है ।

१९. स्थिरसुखमासनम् । (२/४६)

शब्दार्थ - (स्थिर-सुखम्) (ध्यान के लिए जिस अवस्था में) शरीर स्थिर और सुखयुक्त हो वह (आसनम्) आसन कहाता है ।

सूत्रार्थ - जिस अवस्था में शरीर स्थिर और सुखयुक्त हो वह 'आसन' कहाता है।

२०. प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् । (२/४७)

शब्दार्थ - (प्रयत्न-शैथिल्य-अनन्त-समापत्तिभ्याम्) समस्त शारीरिक चेष्टाओं को रोक देने से और अनन्त परमात्मा में ध्यान लगाने से (आसन की सिद्धि होती है) ।

सूत्रार्थ - शारीरिक समस्त चेष्टाओं को रोक देने से और अनन्त परमात्मा में ध्यान लगाने से आसन की सिद्धि होती है ।

२१. ततो द्वन्द्वानभिघातः । (२/४८)

शब्दार्थ - (ततः) आसन की सिद्धि हो जाने से (द्वन्द्व-अनभिघातः) शीतोष्ण, भूख-

प्यास आदि द्वन्द्व न्यून सताते हैं (और ध्यान में सुविधा होती है) ।

सूत्रार्थ - आसन की सिद्धि हो जाने से शीतोष्ण, भूख-प्यास आदि द्वन्द्व न्यून सताते हैं और ध्यान लगाने में सुविधा होती है ।

२२. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः । (२/४९)

शब्दार्थ - (तस्मिन्) आसन की सिद्धि (सति) हो जाने पर (श्वास-प्रश्वासयोः) श्वास और प्रश्वास की (गति-विच्छेदः) गति को यथाशक्ति रोक देना (प्राणायामः) 'प्राणायाम' कहलाता है ।

सूत्रार्थ - आसन की सिद्धि हो जाने पर श्वास-प्रश्वास की गति को रोक देना 'प्राणायाम' कहलाता है ।

२३. बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः । (२/५०)

शब्दार्थ - (बाह्य-आभ्यन्तर-स्तम्भवृत्तिः) बाह्यवृत्तिः = प्राण को बाहर निकालकर बाहर ही रोक देना । आभ्यन्तर वृत्तिः = प्राण को अन्दर लेकर अन्दर ही रोक देना । स्तम्भवृत्तिः = न बाहर निकालना न अन्दर लेना, = जहाँ का तहाँ रोक देना । (देश-काल-संख्याभिः) देश - जितने स्थान पर प्राण की क्रिया होती है । काल - जितने समय तक प्राण अन्दर, बाहर या जहाँ का तहाँ रुका रहता है । संख्या - एक प्राणायाम के नियत काल में जितने श्वास-प्रश्वास हो सकते हैं उनकी गणना करना । और कितने प्राणायाम किये उनकी संख्या को जानना । इन सबसे (परिदृष्टः) देखा = जाना हुआ (दीर्घ-सूक्ष्मः) लम्बा और हल्का (हो जाता है) ।

सूत्रार्थ - बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति प्राणायाम देश, काल और संख्या के द्वारा जाना हुआ लम्बा और हल्का हो जाता है ।

२४. बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः । (२/५१)

शब्दार्थ - (बाह्य-आभ्यन्तर-विषय-आक्षेपी) बाह्य तथा आभ्यन्तर प्राणायाम के विषय को दूर करने वाला अर्थात् उनकी स्थिति को हटाने वाला यह (चतुर्थः) बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी नामक चतुर्थ प्राणायाम है ।

सूत्रार्थ - बाह्य तथा आभ्यन्तर प्राणायाम के विषय को दूर करने वाला 'बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी' नामक चतुर्थ प्राणायाम कहलाता है ।

२५. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् । (२/५२)

शब्दार्थ - (ततः) उस प्राणायाम के अनुष्ठान से (क्षीयते) क्षीण हो जाता है (प्रकाश-आवरणम्) विवेक ज्ञान का आवरण (= अर्थात् अज्ञान) ।

सूत्रार्थ - उस प्राणायाम के अनुष्ठान से विवेकज्ञान का आवरण = अज्ञान क्षीण हो जाता है ।

शब्दार्थ - (धारणासु) धारणाओं में (च) और (योग्यता) सामर्थ्य (मनसः) मन की होती है।

सूत्रार्थ - और उस प्राणायाम के अनुष्ठान से धारणाओं में अर्थात् मस्तिष्कादि विभिन्न स्थानों में मन को लगाने की योग्यता हो जाती है अर्थात् योगाभ्यासी जहाँ कहीं भी मन को रोकना चाहे, वहाँ रोकने में समर्थ हो जाता है ।

२७. स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः । (२/५४)

शब्दार्थ - (स्व-विषय-असम्प्रयोगे) अपने-अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न होने पर (चित्तस्य-स्वरूप-अनुकार) रुके हुवे चित्त के स्वरूप के (इव) तुल्य (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियों का अनुकरण (रुक जाना) (प्रत्याहारः) 'प्रत्याहार' कहलाता है ।

सूत्रार्थ - इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न होने पर चित्त के अनुसार होना 'प्रत्याहार' कहलाता है ।

२८. ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् । (२/५५)

शब्दार्थ - (ततः) उस प्रत्याहार की सिद्धि से (परमा) उत्कृष्ट (वश्यता) नियंत्रण होता है (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियों का ।

सूत्रार्थ - उस प्रत्याहार के सिद्ध होने से इन्द्रियों की 'उत्कृष्ट वश्यता' होती है अर्थात् इन्द्रियाँ पूर्णरूपेण वश में आ जाती हैं ।

२९. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा । (३/१)

शब्दार्थ - (देश-बन्धः) देश विशेष में बाँधना (चित्तस्य) चित्त को (धारणा) धारणा है ।

सूत्रार्थ - चित्त को देशविशेष अर्थात् नाभि, हृदय, मस्तक, आदि में स्थिर करना 'धारणा' है ।

३०. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् । (३/२)

शब्दार्थ - (तत्र) जिस स्थान में धारणा की हुई है उस स्थान में (प्रत्यय-एकतानता) ज्ञेय विषयक ज्ञान का एक समान बना रहना (ध्यानम्) ध्यान है ।

सूत्रार्थ - जिस स्थान में धारणा की हुई है उसी स्थान में ज्ञेय-विषयक ज्ञान का एक समान बना रहना अर्थात् ज्ञेय विषयक ज्ञान से भिन्न ज्ञान को उपस्थित न करना 'ध्यान' है ।

३१. तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः । (३/३)

शब्दार्थ - (तद्-एव) वह ध्यान = ध्येय विषयक ज्ञान ही (अर्थमात्र-निर्भासं) केवल वस्तु के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला (स्वरूप-शून्यम्-इव) अपने स्वरूप से शून्य हुआ जैसा (समाधिः) समाधि है ।

सूत्रार्थ - वह ध्यान ही केवल ध्येय के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला, अपने ध्यानात्मक

thearyasamaj.org

३२. त्रयमेकत्र संयमः । (३/४)

शब्दार्थ - (त्रयम्) धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों का (एकत्र) एक विषयक होना (संयमः) संयम है ।

सूत्रार्थ - धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों का एक विषय के साक्षात्कार के लिये प्रयोग करना 'संयम' है। धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों का इस शास्त्र में यह पारिभाषिक नाम है।

अति आत्म या एकी साधना (संक्षिप्त प्रारूप)

लेखक : स्व.डॉ.त्रिलोकीनाथ जी क्षत्रिय

स्थिरं सुखम् आसनम् ।।१।।
स्व आकलन ।।२।।
त्रि दीर्घ सम विपश्यना ।।३।।
दीर्घ समगति "अगाओ"
उच्चारण ।।४।।
सुचालनम् ।।५।।
पादयोः
ऊर्वोः
बाहुभ्यां यशोबलम्
करतलकरपृष्ठे
सुचालनम् ।।५।।
सुस्थिरम् ।।६।।
नाभिः
हृदयम्
कण्ठः
शिरः
सुस्थिरम् ।।६।।
नवद्वारम् ।।७।।
पायु
उपायु
मुख
द्वि नाक
द्वि आंख
द्वि कान
नवद्वारम् ।।७।।
द्वि द्वारम् ।।८।।
नाभि
मूर्धा
द्वि द्वारम् ।।८।।
अष्टचक्र ।।९।।
भूः मूलाधार
जनः
स्वः
महः
अनाहतः
तपः
भुवः
सत्यम्सहस्रार
अष्टचक्र ।।९।।
सप्त ऋषि ।।१०।।
वाक् वाक् ।।१०/१।।
अपरा

vedicaryasamaj.org

परा
पश्यन्ती
मध्यमा
वैखरी
अभिव्यक्ता
अव्यक्ता
वाक् वाक् ।।१०/१।।
प्राणः प्राणः ।।१०/२।।
प्राण
अपान
समान
व्यान
उदान
प्राणः प्राणः ।।१०/२।।
चक्षुः चक्षुः ।।१०/३।।
सूर्य है ज्योति ज्योति है सूर्य स्वाहा
सूर्य है वर्च ज्योति है वर्च स्वाहा
ज्योति है सूर्य ज्योति है सूर्य स्वाहा
अग्नि है ज्योति ज्योति है अग्नि स्वाहा
अग्नि है वर्च ज्योति है वर्च स्वाहा
ज्योति है अग्नि ज्योति है अग्नि स्वाहा
चक्षुः चक्षुः ।।१०/३।।
श्रोत्रं श्रोत्रम् ।।१०/४।।
प्राची
दक्षिणा
प्रतीची
उदीची
ध्रुवा
ऊर्ध्वा
अदिति
श्रोत्रं श्रोत्रम् ।।१०/४।।
सप्त ऋषि ।।१०।।
पंच कोष ।।११।।
अन्नमय कोष
प्राणमय कोष
मनोमय कोष
विज्ञानमय कोष
आनन्दमय कोष
पंच कोष ।।११।।
पंच अवस्था ।।१२।।
जागृत
स्वप्न
सुषुप्ति
तुरीय
तुरीयातीत
पंच अवस्था ।।१२।।
पंच साधना ।।१३।।
अन्तर्स्पर्श
अन्तर्रस
अन्तर्गन्ध
अन्तर्रूप
अन्तर्शब्द
पंच साधना ।।१३।।
त्रि शरीर ।।१४।।
स्थूल शरीर
सूक्ष्म शरीर

vedicvyasamandir.org

अव्याहत शरीर
त्रि शरीर।।१४।।
सप्त प्रकृति।।१५।।
सूक्ष्म
सुकंपनशील
सत
बिन्दु
निकट
पदार्थ तत्त्वं
देव काव्यम्
सप्त प्रकृति।।१५।।
सप्त आत्म।।१६।।
सूक्ष्मतर
सुकंपनशील
सच्चित
चिद्बिन्दु
ब्रह्म निकट
तत्वं सुपदार्थ
ब्रह्म में
सप्त आत्म।।१६।।
सप्त अतिआत्म।।१७।।
सूक्ष्मतम् महानतम्
अकंपनशील सर्वगतिदाता
सच्चिदानन्द
चिद्बिन्दु आनन्द
दूर से दूरतम निकट से निकटतम
सर्वत्र सम
खं ब्रह्म
सप्त अतिआत्म।।१७।।
त्रि वाक्।।१८।।
आदि मध्य अन्त सम
अगाओ थम् अगाओ थम अगाओ थम्
त्रि वाक्।।१८।।
किसकी अर्चना उसकी अर्चना।।१९।।
आत्मधा आत्मदा
शृतधा शृतदा
अमृतधा अमृत छाया
ओजधा ओजदा
ऋतधा ऋतदा
बलधा बलदा
शृत्विजा ऋत्विजा
गृहनियंता हिरण्यगर्भा
पूर्णधा पूर्णदा
किसकी अर्चना उसकी अर्चना।।१७।।
अगाओ पूर्णम्।।१८।।
पूर्ण है यह
पूर्ण है वह
पूर्ण है यह वह
पूर्ण है
पूर्ण को कहते हैं पूर्ण
पूर्ण से पूर्ण आहर
पूर्ण ही बचता शेष
पूर्ण है अशेष
अगाओ पूर्णम्।।१८।।
मैं हूं पूर्ण में।।१९।।

aryasamaj.org

तैरता सा दौड़ता
दौड़ता सा तैरता
उड़ता सा तैरता
तैरता सा उड़ता
अमृत हूं ओढ़ता
अमृत हूं बिछाता
अमृत हूं पीता
अमृत हूं जीता
मैं हूं पूर्ण में।।१९।।
अध्यात्म अवतरणम्।।२०।।
अगाओ आत्म में
आत्म अर्थ में
अर्थ बुद्धि में
बुद्धि चित्ज्ञान में
चित्ज्ञान मन में
मन ज्ञानेन्द्रियों में
ज्ञानेन्द्रियां कर्मेन्द्रियों में
कर्मेन्द्रियां सुपथ में
अध्यात्म अवतरणम्।।२०।।
शृत ऋत अवतरणम्।।२१।।
शृतम्भरा मेधा
ऋतम्भरा प्रज्ञा
ऋग्वेद वाक्में
यजुर्वेद मन में
सामवेद प्राणन में
अथर्ववेद इन्द्रियन में
आयुर्वेद तन में
नाट्यवेद जीवन में
शृत ऋत अवतरणम्।।२१।।
सुजीवनम्।।२२।।
ज्ञान श्रम तप नियम सुरचना
श्री समृद्धि यशमयी सुरचना
धर्म अर्थ काम मोक्ष सुजीवनम्
सुजीवनम्।।२२।।
पवित्र अवतरणम्।।२३।।
आरोह इमं सुखं रथम्
अगाओ आत्म पवित्र
अगाओ आत्म में
आत्म अन्तर्अस्तित्व पवित्र
अन्तर्अस्तित्व आत्म में
अन्तर्अस्तित्व प्रज्ञा पवित्र
अन्तर्अस्तित्व प्रज्ञा में
अन्तर्ज्योति नेत्र पवित्र
अन्तर्ज्योति नेत्र में
अन्तर्शब्द कर्ण पवित्र
अन्तर्शब्द कर्ण में
अन्तर्गन्ध नासिका पवित्र
अन्तर्गन्ध नासिका में
अन्तर्रस रसना पवित्र
अन्तर्रस रसना में
अन्तर्स्पर्श त्वक्पवित्र
अन्तर्स्पर्श त्वक्में
अन्तर्स्वर कण्ठ पवित्र
अन्तर्स्वर कण्ठ में
अन्तर्अक्षर वाक्पवित्र
अन्तर्अक्षर वाक्में
अन्तर्महत्हृदय पवित्र
अन्तर्महत्हृदय में

thearyasamaj.org

अन्तर्स्फुरण नाभि पवित्र
अन्तर्स्फुरण नाभि में
अन्तर्बल तन पवित्र
अन्तर्बल तन में
अन्तर्ओज अन्तःकरण पवित्र
अन्तर्ओज अन्तःकरण में
खं ब्रह्म सर्वत्र पवित्र
खं ब्रह्म सर्वत्र में
अगाओ सर्वत्र पवित्र
अगाओ सर्वत्र में
पवित्र अवतरणम्।।२३।।
शत अधिकम् जीवनम्।।२४।।
तब अब तब अगाओ ब्रह्म
अस्थाई अब हम
अगाओ युजित हम
देखें अगाओ शत अधिकम्
सुनें अगाओ शत अधिकम्
श्वासें अगाओ शत अधिकम्
कहें अगाओ शत अधिकम्
आस्वादें अगाओ शत अधिकम्
स्पर्शें अगाओ शत अधिकम्
रहें अगाओ शत अधिकम्
आरोहें अगाओ शत अधिकम्
स्वस्थ अगाओ शत अधिकम्
अदीन अगाओ शत अधिकम्
शत अधिकम् जीवनम्।।२४।।
दिव्य शान्ति अवतरणम्।।२५।।
द्युतिशील शान्त प्राप्त
अन्तरिक्ष शान्त प्राप्त
आधार धरा शान्त प्राप्त
प्रवहणशील शान्त प्राप्त
औषध अनाज शान्त प्राप्त
वनस्पति रस शान्त प्राप्त
शृत शान्त प्राप्त
ऋत शान्त प्राप्त
महादेव शान्त प्राप्त
देव शान्त प्राप्त
प्रदेव शान्त प्राप्त
उपदेव शान्त प्राप्त
अगाओ शान्त प्राप्त
शान्ति शान्त प्राप्त
सर्व सामंजस्य शान्त प्राप्त
आधिदैविक शान्त प्राप्त
आधिभौतिक शान्त प्राप्त
अध्यात्म शान्त प्राप्त
दिव्य शान्ति अवतरणम्।।२५।।
दीर्घ सम गति "अगाओ" उच्चारण।।२६।।
त्रि दीर्घ सम विपश्यना।।२७।।
स्व आकलन।।२८।।

thearyasamaj.org

आर्ष शोध संस्थान, अलियाबाद एक परिचय..

लगभग नौ वर्षों तक बोईनपल्ली आर्य समाज सिकन्दराबाद में अत्यन्त निष्ठा एवं परिश्रम से आचार्याओं को तैयार करके उनके नेतृत्व में संवत् २०५५ वि. में शिवरात्रि के दिन, तदनुसार १६/२/१६६६ ई. को अलियाबाद ग्राम में आर्ष-शोध-संस्थान नाम से एक कन्या गुरुकुल का शिलान्यास किया गया। स्वल्प समय में ही न्यूनतम आवासीय निर्माणकार्य को पूरा करके संवत् २०५७ वि. में दीपावली के दिन, तदनुसार २७/१०/२००० ई. को नए भवन में अध्ययन-अध्यापन प्रारम्भ हुआ।

इस संस्थान/गुरुकुल में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा सत्यार्थ प्रकाश आदि पुस्तकों में निर्दिष्ट पाठविधि के अनुसार आर्ष पद्धति से अध्यापन होता है। इससे अल्पकाल में ही पाणिनीय-व्याकरण, निरुक्त, षडदर्शन तथा अन्य वेद-वेदांगादि विषयों की पारंगत विदुषियाँ एवं आदर्श महिलाएं तैयार हो सकें। वैदिक विद्वानों की निरन्तर होती जा रही कमी को यथासम्भव पूरा किया जा सके। वैदिक एवं ऋषियों की विद्या का देश-विदेश में व्यापक प्रचार-प्रसार हो सके तथा प्राचीन वैदिक-ग्रन्थों के विभिन्न भाषाओं में प्रामाणिक भाष्य हो सकें।

अध्यात्म प्रधान जीवन व्यतीत करते हुए सात्विक आहार, प्रतिदिन संधिवेला में संध्या-अग्निहोत्र तथा आर्ष ग्रन्थों का अत्यन्त उत्साह एवं परिश्रम से अध्ययन-अध्यापन यह कन्या गुरुकुल की विशेषता है। आर्ष पाठविधि से अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त इस संस्थान/गुरुकुल की अन्य विशेषताएं हैं- क) आवास, भोजन, वस्त्र, पुस्तकें, एवं अध्यापन आदि की समान निःशुल्क व्यवस्था। ख) संस्कृत सम्भाषण। ग) आध्यात्मिक प्रशिक्षण। घ) पौरोहित्य प्रशिक्षण। ङ) भविष्य में किए जानेवाले अनुसंधान आदि को ध्यान में रखकर छात्राओं को संगणक यन्त्र का प्रशिक्षण (कम्प्यूटर ट्रेनिग) आदि। **... आचार्य आनन्दप्रकाशः**

healyasamaj.org

पाणिनीया पाठशाला,

बिंजराजका वटुक विकास केन्द्र,

अलियाबाद, तेलंगाणा- एक परिचय..

आचार्य भवभूति जी, जो १८ वर्षों तक पहाड़गंज दिल्ली में गुरुकुल का सफल संचालन अनुभव प्राप्त करके २००४ ईस्वी में अलियाबाद तेलंगाणा में वटुक विकास केन्द्र नाम से स्थापना कर सफल संचालन कर रहे हैं। गत तीन वर्ष से पाणिनीया पाठशाला नाम से आर्ष पाठ्यक्रम का विभाग भी खोला गया है.. जिसमें अष्टाध्यायी क्रम से महर्षि दयानन्द निर्दिष्ट विधि से अध्यापन व्यवस्था है। हैदराबाद निवासी बिंजराजका परिवार द्वारा स्थान एवं आवास की व्यवस्था गुरुकुल को निःशुल्क प्राप्त है। वर्तमान में यहाँ नेपाल से तथा भारत के कई प्रान्तों से छोटे-बड़े बालक अध्ययनरत हैं।

पांच वर्ष की आयु से ही यहाँ बालक का प्रवेश होता है। आठवीं कक्षा तक की परीक्षाएँ यहीं विद्यालय में ली जाती हैं तथा नौवीं से आगे की परीक्षाएँ सरकारमान्य संस्थाओं से दिलवाई जाती हैं। इस गुरुकुल में आधुनिक विषयों में से अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, इतिहास हिन्दी एवं तेलगु भाषाज्ञान के साथ ही आदर्श वैदिक दिनचर्या जिसमें प्रतिदिन ध्यान-आसन-व्यायाम-प्राणायाम, दोनों समय अग्निहोत्र, वेदपाठ, श्लोकगायन, वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, आत्मनिरीक्षण प्रवचनाभ्यास आदि कराया जाता है। शुद्ध शाकाहारी भोजन, गुरुकुल की गोशाला से गायों का दूध, फलादि सात्विक एवं पौष्टिक भोज्य वटुकों को प्राप्त होता है।

बिना किसी सरकारी अनुदान से चलनेवाले इस गुरुकुल के लिए दानी महानुभावों से सहायता की अपेक्षा की जाती है..!! सहायेच्छु महानुभाव कृपया ९३९०७९२६४५ इस दूरभाष पर आचार्य जी से सम्पर्क कर सकेंगे। **..."आर्यवीर"**